अनुभूति

के

शब्द-शिल्प

••

श्रमण-शिरोमणि भगवान महावीर स्वामी की
२५वीं निर्वाण-शताब्दी-समारोह के उपलक्ष्य में

ज्ञानपीठ पुष्प—११

अनुभूति के शब्द-शिल्प

निबन्धकार

श्रमण संघीय एवं जैन-दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता स्व० पं० र०
मुनिश्री चौथमल जी महाराज साहब के
प्रशिष्य प्रिय व्याख्यानी तपोधनी मुनि
श्री मंगलचन्दजी महाराज
साहब के सुशिष्य
संस्कृत-विशारद मुनि श्री भगवतीलाल जी महाराज
'निर्मल'

सम्पादक

कुमार सत्यदर्शी

प्रकाशक :
श्री वर्द्धमान जैन ज्ञानपीठ
मु० पो० तिरपाल, जि० उदयपुर (राज०)

वीर संवत्
२५८०

मूल्य
छः रुपये

पुस्तक : अनुभूति के शब्द-शिल्प

लेखक : श्री भगवती मुनि 'निर्मल'

विषय : अनुभूतिपरक शब्द-चिन्तन

कथावस्तु : सद् विचार की वर्णमाला में सदाचार
का प्रवर्तन कथन

सम्पादक : कुमार सत्यदर्शी

प्रकाशक : पुखराज गणेशमल भोगर
मन्त्री श्री वर्धमान जैन ज्ञानपीठ
तिरपाल, जि० उदयपुर (राज०)

प्रकाशन वर्ष : श्रमण-शिरोमणि भ० महावीर
स्वामी की २५वीं निर्वाण-शताब्दी

संस्करण : प्रथम

प्रतियाँ : १०००

मूल्य : छः रुपये

मुद्रक : एस० नारायण एण्ड संस (प्रिंटिंग प्रेस)
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

समर्पण

मेरे जीवन की गुण-गरिमा के प्रकाशन में महान
प्रकाश-स्तम्भ रहे हैं और मेरी जीवन-नैया के लिए
जो पथ-प्रदर्शक रहे हैं, उन परमाराध्य श्रद्धेय
गुरुदेव प्रिय व्याख्यानी तपस्वी श्री मंगलचन्दजी
महाराज साहब के पावन चरण-कमलों
में श्रद्धा-भक्ति सहित
समर्पित।

चरणाम्बुज चञ्चरीक
भगवती मुनि 'निर्मल'

अर्थ-सहयोगी

आधार-स्तम्भ

श्रीमान दानवीर धर्मप्रेमी लाला मिट्ठनलाल सुदर्शनलाल
वीरसेन जी एंड सन्स, दिल्ली-६

,, ,, शाह प्रवीण कुमार हीराचन्द वाटविया
माटुंगा (बम्बई)

,, ,, प्राणीमित्र पद्मश्री श्री आनन्दराज सुराणा

,, ,, प्रभुलाल छगनलाल शाह, दिल्ली-६

,, ,, गुप्त दान ,, ,,

,, ,, श्रीमती सौ० लज्जावती देवी, धर्मपत्नी,
लाला गुलशन राय जैन, तिमारपुर, दिल्ली

,, ,, लाला तिलोकनाथ जैन, साबुन वाले
(अपनी मातुश्री स्व० लब्बादेई की स्मृति में), दिल्ली-६

,, ,, जोरावरमल जग्गूमल जौहरी, दिल्ली-६

स्तम्भ

श्रीमान दानवीर गुप्त दान वीर नगर, दिल्ली-५

,, ,, ,, दिल्ली-६

सम्माननीय सदस्य

श्रीमान दानवीर सौ० श्रीमती मैनाबाई चेतनलाल जी
दोघट

,, ,, सौ० श्रीमती पद्मश्री ओमप्रकाशजी जैन ,,

,, ,, लाला पूणचन्द पदन कुमार भट्टे वाले ,,

,, ,, जयपाल सिंह संजय कुमार जैन ,,

,, ,, श्रवणकुमार बलवन्तराय जैन,
नया बांस, दिल्ली-६

,, ,, राजेन्द्र कुमार जैन, करोल बाग, दिल्ली

अपने चिन्तन के झरोखे से

भारतीय संस्कृति की गौरव-गरिमा से युक्त, साहित्यामृत से परिपूर्ण क्षीर-समुद्र में एक नहीं अनेक घूँट हैं, अनेक बूँदें हैं। जिसकी जैसी इच्छा हो वह उतनी ही बूँदों का पान कर अमर बन सकता है। प्रत्येक सामग्री वृहद् रूप में आबद्ध होने पर पाठक को अरुचिकर प्रतीत होती है और न उसके पास इतना समय है कि वह शांत मन से पढ़ सके। छोटी-सी वाक्यावलियों को वे तन्मयता पूर्वक पढ़कर अपने जीवन को सफल बना सकते हैं।

कुरुचि पूर्ण साहित्य के पढ़ने से जीवन सर्वांग सुन्दर, सत्यं शिवं सुन्दरम् बनेगा, यह आशा कैसे की जा सकती है ? अनाचार, पापाचार को प्रोत्साहन देने वाले साहित्य से व्यक्ति नैष्ठिक त्यागी बने, यह आकाश-पुष्प के समान असम्भव है। जैसे कागज के फूलों से पराग की आशा नहीं की जा सकती, वैसे ही घासलेटी साहित्य से नैतिक जीवन-निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती।

भारतीय साहित्याकाश में सूक्तियों का अपना विशिष्ट स्थान है। भारतीय सूक्तियाँ देदीप्यमान उज्ज्वल नक्षत्र हैं, जो मानव के अन्तराल में व्याप्त उल्लास की विचार-तरंगों को उद्वेलित करती रहती हैं। इन्हीं सूक्तियों के प्रकाश में बुद्धि और हृदय एक साथ आन्दोलित हो जाते हैं। यह हमारे जीवन में व्याप्त अज्ञानावरण का परित्याग कर ज्ञान-पुञ्ज को प्रकट करता है। ग्रीवा में

जिस प्रकार मुक्तामणि शोभित होती है, उसी प्रकार सुन्दर जीवन निर्माणकारिणी सूक्तियाँ मानव-समूह में शोभित होती हैं।

निराशा के बन्धनों से आबद्ध मानव-समूह में आशा की किरणें जगाने वाली सूक्तियाँ ज्योतिस्तम्भ हैं। ध्रुव तारे के समान ये दिशा-दिग्दर्शक-प्रबोधक हैं। सूक्तियाँ मानव-समूह के मध्य कल्पलता के समान वाञ्छित फल-दायिनी हैं। अनुभवी महापुरुषों के जीवन-भर का अनुभवामृत निर्झर सूक्ति रूपी बूँदों के रूप में रहता है। सूक्तियाँ देश और काल की सीमा पार करके सर्वदेश और सर्वकाल में अपना विशिष्ट स्थान बना लेती हैं। वे सर्वदा मधुर रस सम्पृक्त कर देती हैं। यदि सम्पूर्ण शब्द-समूह को हम सूर्य कह दें तो सूक्तियों को उस देदीप्यमान रवि की किरणें कह सकते हैं, जो समग्र मानव-चेतना को जागृत करती हैं। मानव के मन-मस्तिष्क को आलोकित कर देती हैं।

प्रस्तुत कृति चिन्तन, मनन, निदिध्यासन द्वारा प्राप्त [illegible] सूक्ति-मञ्जरियाँ हैं, जो समय-समय पर अनुभूत हुई हैं। निरयावलिका सूत्र पर विवेचन लिखते समय हृदयाकाश में जो भी विचार उठते गये, नवीन साहित्य के सृजन की प्रयोगशाला में संशोधित और परिमार्जित होकर 'अनुभूति के शब्द शिल्प' के रूप में प्रस्तुत हैं। [illegible] आध्यात्मिक एवं सामाजिक चिन्तन सूत्रों का [illegible] है। इसमें सहृदय पाठक नवीनता का अनुभव करेगा। आध्यात्मिक व सामाजिक जन-जीवन के [illegible] अंधकार में दीपक [illegible] [illegible]

भावना प्रकट की है। इसमें पाठक ज्यों-ज्यों गहरे उतरेंगे त्यों-त्यों उसमें प्रकाश प्राप्त करेंगे। भाषा और भाव प्रौढ़ हो, इसका विशेष ध्यान रखा गया है।

सर्व प्रथम मैं अपने पूज्य गुरुदेव महान् तपोनिधि प्रिय व्याख्यानी मुनि श्री मंगल चन्द जी महाराज साहब का अत्यन्त आभारी हूं, जिनकी कृपादृष्टि से परिपूर्ण वरद हस्तान्दोलित शुभाशीष से यहाँ तक की साधना की अपनी मंजिल की डगर पकड़ सका हूं—अक्षर-ज्ञान से लेखनी चलाने में समर्थ हो सका हूं।

श्रीमान स्नेहोप्रवर मूर्धन्य कलम-कलाधर कुमार सत्यदर्शी की कृतज्ञता प्रकट करता हूं, जिन्होंने अन्य कार्यों में व्यस्त होते हुए भी मेरे अनुरोध को स्वीकार कर पुस्तक की भाषा सजाई-सँवारी है।

घोर तपस्वी श्री देवीलाल जी महाराज भी धन्यवादार्ह हैं कि जो यथासमय स्वास्थानुकूल साधन उपलब्ध करने में समुद्यत रहते हैं।

मूर्धन्य मनीषी परम-स्नेही प. र. श्री नेमीचन्दजी महाराज का आभारी हूं, जिन्होंने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर भूमिका लिखी है। विद्वद्वरेण्य श्री विमल कुमार जी जैन (वरिष्ठाध्यापक, दिल्ली यूनिवर्सिटी) भी धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने 'शिल्प-परिचय' लिखने में अपना अमूल्य समय दिया है।

श्रीमान देवीप्रसाद जायसवाल (कलकत्ता) भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने पुस्तक के वाह्यावरण को सजाने-सँवारने और प्रूफ संशोधनमें अपना अमूल्य समय दिया है।

कुछ शीर्षक स्वयं में अपनी ही व्याख्या हैं, किन्तु इतने सुगठित और भावपूर्ण हैं कि मन मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। यथा, 'संस्कृति को तोड़ो नहीं, मोड़ो', 'इधर एक चिराग : उधर एक रोशनी', 'दया की धारा की अनुगामिनी राधा है' और 'अपनी-अपनी एक सूना पर' आदि। कतिपय शीर्षकों में लक्षण, स्वरूप एवं भेद इत्यादि संक्षेप में किन्तु बड़े ही औचित्य के साथ निरूपित हुए हैं, जैसे, पापी, लोकापवाद, स्वाभिमान, मित्र के आदर्श, बालक, क्रोध के परिणाम, स्वनिर्माता, हितैषी, दावात, कृपण, प्रेम व वासना और तप आदि।

इस खण्ड में अनेक स्थलों पर भाव बड़े ही मनोज्ञ हैं। ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर बताते हुए लिखा है कि ज्ञानी धैर्यपूर्वक सहता है, अज्ञानी रोकर। क्रोध के परिणाम को इस प्रकार चित्रित किया गया है कि क्रोध मूर्खता की पहली किरण से शुरू होता है और पश्चात्ताप की अन्तिम परिणति में समाप्त होता है। इसी प्रकार 'अब वैर क्यों' में वृद्ध मानव पर कैसी सटीक चोट की गई है। लिखा है—खट्टा आम और खट्टी निबौरी परिपक्व होकर मीठे हो जाते हैं, परन्तु मनुष्य परिपक्व होकर मिठास क्यों नहीं लाता। कृपण पर यह वक्रोक्ति भी दर्शनीय है—कृपण सबसे बड़ा दानी है, क्योंकि

पर्व' और 'ध्रुव सचाई' आदि में शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया गया है।

तीसरा अंश है 'अनुभूति के शब्द-शिल्प'। इसमें अधिकांश शीर्षकों में दृष्टान्त और प्रश्नोत्तर के माध्यम से तत्त्व का स्पष्टीकरण है, जैसे, विलम्ब हो रहा है, ममत्व की अमिट रेखा, पांच गर्वोन्नताएं, अन्तरदीप जला रे, भिक्षुक का उत्तर और कर्त्तव्य की बलि-वेदी पर। इनमें जो दृष्टांत दिए गये हैं, वे बड़े ही मार्मिक एवं प्रेरणा-दायक हैं।

इसका चौथा एवं अन्तिम अंश है—'अँधियारे के दीप के शब्द-शिल्प'। इसमें वाणी का माधुर्य और मौन का महत्व बतलाया गया है। तदनन्तर ऐसी सूक्तियाँ भी हैं, जो संसार के वास्तविक रूप को दिखाती हैं, जीवन के सन्मार्ग पर प्रकाश डालती हैं तथा आत्मा के अन्तिम लक्ष्य का बोध कराती हैं। वास्तव में यह अज्ञानांधकार में ज्ञान-दीपक का प्रकाश ही दिखाता है।

इस प्रकार समस्त पुस्तक अध्याय-रत्नों की एक मंजूषा है, जिसमें सभी तात्त्विक विषयों पर मनोहारी भाषा में स्मरणीय वाक्य संग्रहीत हैं। यथार्थतः मुनिजी स्तुति और साधुवाद के पात्र हैं, जो उन्होंने बड़े

सावन घन बरसो—मन !

सावन के घन बरसते हैं। वे पानी से भरे हैं, इसलिए उनमें देने की शक्ति है। वे सक्षम और समर्थ हैं। जब बरसते हैं तो कृपणता नहीं करते—गरीब-अमीर का विभेद नहीं करते—वे गरजते हैं और गरज-गरज कर बरसते हैं, बस।

और मैं यह तुलना करने लगा हूं:

मनुष्य का उदार मन भी, सावन घन बन, बरस सकता है—उसका मन स्पंदन और मानवीय संवेदनाओं से सूना तो नहीं है, फिर वह क्यों नहीं बरसता ?

जो समर्थ है, महान है, ऐश्वर्यशाली है, वही तो बरसेगा, सरसेगा। बेचारा दीन-दरिद्र क्या पहन कर नहाए और क्या पहन कर निचोड़े ?

यह सोचना गलत है—भूल-भरा है। हजारों साल से मानव को इन्हीं जड़ विचारों ने दरिद्र और भावों से भूखा-नंगा बना रखा है।

जिसका मंगल मन समत्व का प्रेमी है, जिसके अन्तर में मानवीय संवेदना की रागिनी बजती है, वह निश्चय ही बरसता है—वह अवश्य बरसेगा।

शोषण द्वारा जो पैसा अर्जित होता है, उसमें श्रमिक का पसीना ही नहीं, खून की बूंदें भी झलकती हैं।

श्रद्धा और तर्क

श्रद्धा और तर्क !

श्रद्धा में अर्पण है। तर्क में प्रश्न-चिन्ह का अंकन है—कसौटी का प्रस्तुतिकरण है। श्रद्धा पलकें मूंदने की बात कहती है। तर्क यथार्थ की कसौटी पेश करता है।

कसौटी को भूल जाएं, यह भी गलत है। अर्पण को बिसार दें, यह उससे भी गलत है।

तब सत्य क्या है ?

दोनों का बराबर मूल्य है। घिसते-घिसते चंदन में भी गर्मी पैदा होती है। केवल अर्पण ही अर्पण हो तो समर्पण का आनन्द पीछे छूट जाता है। अतः दोनों का मूल्य है और बराबर का है।

एकत्व

ज्ञानशून्य अज्ञानी के मन-मस्तिष्क में शताधिक विचार होते हैं—वह शताधिक पथ पर अग्रसर होना चाहता है।

ज्ञानयुक्त ज्ञानी में शताधिक विचार-भेद होते हैं, किन्तु मूल रूप में वह एक ही ज्ञान-आलोक की ओर अग्रपद होता है।

कब्रिस्तान पेट का

'जीने के लिए खाना है या खाने के लिए जीना है।' बहुधा मनुष्य इस समस्या के मध्य पृथक्करण रेखा न

उसके पास धन न हो तो ?

धन हो न हो, इससे उसकी मानवता मूर्च्छित नहीं होती । दीन-दुखियों की आंतरिक पीड़ा का परिताप वह जानता है, इसलिए धन हो तो क्या, न रहे तो क्या ? उसके पास तन है, अपना मन है । वह तन से सेवा कर आहत की पीड़ा हर सकता है । मन से सेवा कर उसका परिताप हर सकता है । वह मन और तन से सेवा द्वारा वरस सकता है । संत्रस्त को संतोष दे सकता है । वचपन का अमृत घोलकर उसे संजीवन दे सकता है ।

तन की दूरी मन मेट देता है । संत्रास पाने वाला मानव कभी-कभी दूर होता है । आप के उससे कुछ अनुबन्ध हैं । आप को पता चल जाता है कि वह दुःख की आग में जल रहा है, तो उस समय आपके मन का सावन घन वरस-वरस कर उसे पीड़ा की आग से वचा सकता है ।

तालस्ताय ने कहा था :

"आपके पास दो कोट हैं तो एक सर्दी में ठिठुरते इंसान को दे दो । आपके पास दो कंवल हैं तो एक सर्दी में ठिठुरती उस भीख मांगती वूढ़ी माँ को सौंप दो ।

"आपके पास दो रोटी है तो भूख से विलखते वालक को अर्पित कर दो !"

इस तरह मानवीय संवेदन की अनुभूति से अपने अन्तर को पवित्र करो ।

शोषक

शोषक के सुख-संसार की रचना श्रमिक के आँसुओं से रची जाती है । श्रमिक के आँसू शोषक की खुशी हैं ।

काँटों को अपने अधरों से चूमेंगे और कहेंगे कि तेरे काँटों में भी प्यार है और फूलों में भी उतना ही प्यार है।

ईश्वर में असीम समर्पण पैदा कीजिए—आप की आँखों में प्रेम की पवित्र ज्योति के दर्शन होने लगेंगे। उस ज्योति की रोशनी का चमत्कार यह होगा कि शत्रुता तिरोहित, मैत्री प्रतिबिम्बित !

अस्थानीय कार्य

जग में सम्यक् कम, मिथ्या अधिक, सत्य कम असत्य अधिक, योग कम भोग अधिक है। इतना ही नहीं, रोग अधिक निदान कम—यह सब क्यों ?

इसलिए कि रोग कहीं है, चिकित्सा कहीं हो रही है। मंजिल की दिशा दूसरी है, गन्तव्य का पथ कुछ और ही पकड़ लिया जाता है। इस विपर्यय को न मेट पाना ही अस्थानीय प्रयत्न या कार्य है।

पुरुषार्थी और ज्ञानी

परिश्रमी संचय से दूर रहता है और ज्ञानी उलीचने में विश्वास करता है।

सलिला के मध्य में उत्खनन करने से पानी निकलता है। उसका मुक्त भाव से वितरण कीजिये। पानी की कमी नहीं होगी। परिश्रमी और ज्ञानी ने यथार्थ को हृदयस्थ कर लिया है कि ज्यों-ज्यों पानी का वितरण होगा, पानी में वृद्धि होगी—कमी नहीं आ पाएगी।

कार्य की क्षमता

कार्यक्षमता घटती है तब बोलने की शक्ति बढ़ जाती

लीन पाने के कारण ही भक्ष्य और अभक्ष्य का विवेक खो देता है। प्रकृतिप्रदत्त सात्त्विक भोजन के स्थान पर मांस और अंडों का भक्षण कर अपने पेट को कब्रिस्तान बनाता चला जाता है।

संसार एक खेत है

संसार क्या है?

इस सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिकों ने अपने विचारों की अनेक विध व्याख्या की है।

मैं इस सम्बन्ध में एक स्थूल उपमान प्रस्तुत करता हूँ।

संसार एक दर्पण है— आदर्श है। आदर्श में आपने देखा होगा कि आप करबद्ध खड़े हो जाते हैं तो उस में आप के हाथ उसी तरह दिखाई देंगे। यदि गुस्से में भर कर आप तमाचा दिखा रहे हैं तो उसमें तमाचा दिखाने की मुद्रा में आप प्रतिबिम्बित होते हैं।

संसार भी ठीक ऐसा ही यथार्थ दर्पण है। आप अच्छा आचरण करते हैं तो जगरूपी दर्पण में आपका साधु आचार अंकित होता है और दुष्टाचार भी उस में अंकित होता है।

आप अपने हाथों से खेत में धान रोपिए, अदृश्य पत्र पर वह भी अंकित होता है और परिपक्व काल आने पर अच्छा-बुरा क्रमशः फल पैदा होता है और आप उसे पाते हैं।

प्रेम-ज्योति

जब आपकी आंखें पवित्र होंगी, आपकी आँखों में अमृत समायेगा तो आप फूलों को प्यार की थपकियाँ देंगे।

दुर्भाग्य, लक्ष्मी का मनोज्ञ उत्तर सुनकर मौन—ठगा सा खड़ा रहा।

भाग्य-लक्ष्मी तुम्हारे द्वार तक आकर—तुमने देखा कि वह रुक गई है। क्यों?

इसलिए कि तुम काम छोटा हो या बड़ा, उसे आस्थापूर्वक नहीं करते।

लक्ष्मी आतुर है, वह बेचैनी से इन्तजार कर रही है—उस व्यक्ति का, जो अन्तर में यह विश्वास पैदा करे कि "बुरे कार्य का फल देर से मिलता है, अच्छे काम का फल जल्दी मिलता है।"

लोकापवाद

लोकापवाद को अपने दिमाग से नहीं निकालोगे तो तुम्हारा कोई कार्य बन नहीं सकता। लोकापवाद तो अंगीठी का धुआं है। उससे बचकर कहाँ जाओगे। अंगीठी के चारों ओर ही तो वह फैलता है। तुम कहाँ बैठोगे?

अतः लोकापवाद की परवाह मत करो। परवाह मात्र अपने विचार पूर्वक तय किये कार्य की करो। सफलता मिलेगी। वह तुम्हारा लक्ष्य है। लोकापवाद तो सफलता मिल जाने पर भी पीछा करता रहेगा। सफल हो जाने के बाद भी, तुम्हारी सफलता में सन्देह करने वाले मिल जायेंगे। इन दोष-दर्शकों की कब तक परवाह करोगे?

स्वाभिमान

मान खराब वस्तु है और स्वाभिमान अच्छी। स्वाभि-

मान को जीवित रखने की सलाह दी गई है। मान का मर्दन होते ही रहना चाहिए। मान में अविवेक है, घमण्ड है—स्वाभिमान जीवन है।

मान चाहने वाले ही अपमान से डरते हैं। स्वाभिमानी को अपमान का भय नहीं होता, क्योंकि वह मानता है कि अकार्य स्वाभिमान को ठेस पहुंचाता है, अतः मैं इससे सदा दूर रहना चाहता हूं।

तीर्थों में तीर्थ

सभी अच्छी और नेक बातों का उल्लेख करते-करते जब भारतीय संस्कृति का कथा-गायक थक गया तब उसने क्या कहा था ?

उसने कहा था :

सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है। दान तीर्थ है, मन का संयम तीर्थ है, संतोष भी उतना ही बड़ा तीर्थ है। ब्रह्मचर्य का पालन उत्तम तीर्थ है। प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ ही है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है, तप भी तीर्थ है।

किन्तु इन सब तीर्थों में सर्वोपरि तीर्थ है अन्तःकरण की पूर्ण विशुद्धि।

मानसिक पीड़ा

हम किसी को सहसा पागल कह दें, तो वह कुछ कहे न कहे, पर उसके हितैषी आपको नोच खाने को तैयार हो जाते हैं। किन्तु, महापुरुष जिसे पागल कहना चाहते थे,

अन्तर्मंथन से पैदा होने वाला प्रश्न एक चिराग है और उत्तर उसकी रोशनी।

पथ अन्धकारपूर्ण है, गन्तव्य की ओर प्रस्थान करना है तो उसका प्रश्न उस समय उसे चिराग देता है। उसका गमन यदि अपने गंतव्य की ओर है तो, उत्तर उसमें रोशनी का काम करता है।

चिराग और रोशनी में वह अपने पथ पर निर्भय आगे बढ़ सकता है। पथ की बाधायें उसे रोक नहीं सकतीं।

संशय से भ्रम पैदा होता है

जिस गन्तव्य में आस्था न हो, वह तो निश्चय ही उसे भटकायेगा। संशय तो शूल है, वह चुभे बिना न रहेगा। संशय का शूल निकाल कर ही जीवन-यात्रा पर अबाध गति से आगे बढ़ा जा सकता है।

संशय भ्रम को पैदा करता है, भ्रम दिशाहीनता को जन्म देता है। दिशाहीनता ही मनुष्य को लक्ष्य से दूर अन्धकार में भटकाती है।

साथी की पहचान

साथी की उपयोगिता जीवन में है, इससे कतई इन्कार नहीं। किन्तु साथी कैसा हो, इस बारे में सोच लेना बहुत जरूरी है।

आपको साथी की तलाश है—सब को होती है—आपको भी होना स्वाभाविक है, किन्तु वह साथी आपके जीवन को बनाने वाला है या मिटाने वाला है, इस प्रश्न के प्रकाश में साथी का चुनाव होना चाहिए।

आपको साथी चाहिए तो साथी की पहचान भी होनी चाहिए—यह पहचान आपको होगी उसके दूसरे साथी-संगातियों से। वे उसके व्यक्तित्व की सही परख जानते हैं।

संगति कैसी हो ?

साफ बात है साफ शब्दों में—झूठे, ठग और दगाबाज का आप साथ करते हैं तो उसकी छाया आप पर भी पड़ेगी; इसमें दो राय हो ही नहीं सकती। मूर्खों की संगति करने वाला निश्चय ही बरबाद होगा। सज्जनों की संगति निश्चय ही आपको उत्कर्ष के मार्ग पर बढ़ने-चढ़ने की सद्प्रेरणा देगी।

दुर्जन और मूर्ख की संगति गर्म लोहे पर पड़ी बूंद की तरह आपको, आपके उज्ज्वल यश को, परिवार के गौरव को, सामाजिक प्रतिष्ठा को अवश्य नष्ट कर देगी। अतः संगति तो श्रेष्ठ पुरुषों की ही अच्छी है। सुगंध का व्यापार करने वाला चाहे अपने बहुमूल्य तेल या इत्र में से कुछ भी न दे, फिर भी उसकी संगति से आपको सुगन्ध तो प्राप्त होती है। इसी प्रकार उच्च विचारों के व्यक्ति का संग उसके सद्गुण की सुगंध से आपके जीवन को सुवासित कर देगा।

चमत्कार : पारसमणि का

चमत्कार तो उसी का नाम है कि एक बार में ही यानी क्षणिक संपर्क से ही आपके जीवन में परिवर्तन की क्रांति ला दे।

पारस का स्पर्श पाते ही लोहा सोना बन जाता है,

इस कथन को बचपन से सुना जा रहा है। श्रुति में चाहे सचाई हो या न हो, किन्तु जिस गुणसम्पन्न व्यक्ति के आचार से, वाणी से आपका जीवन चमत्कृत हो जाय, वही आपके लिए पारसमणि है।

केवल सत्य

सत्य के हम उन्हें सर्वोत्तम प्रेमी कहते हैं, जो अपने प्रति तथा अपनी आत्मा की आवाज के प्रति ईमानदार हैं। ऐसे व्यक्ति केवल स्वप्न में जीवित नहीं रहते। जो मुँह से कह दिया, उसे कर दिखाते हैं। जो सोच लेते हैं, उसे करने में उनका विश्वास होता है।

सैनिक केवल सैनिक होता है। वह किसी जाति का, पंथ का, प्रान्त का नहीं होता है। उसका काम दुश्मन से लड़ना है। सत्योपासक मात्र एक ही सेना के जवान हैं। उनका दुश्मन है अज्ञानांधकार, मिथ्यात्व, जिसके विरुद्ध उनका संघर्ष है।

शांति का सन्देश

आज आपको जीवन में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है तो शांतचित्त से रहना सीखो—निश्चय मानो कि कल ही से सुख-शांति का अवतरण तुम्हारे अन्तर में होने लगेगा।

इसीलिए तो आदि काल से आज तक मानव को एक ही संदेश—शांति का संदेश दिया जा रहा है कि "जब आवे सन्तोष-धन, सब धन धूल समान।" आपके मन में शांति की कामना है तो आपके लिए संतोष ही परम-धन है।

राजनीति के पैंतरे

राजनीतिक व्यक्ति प्यार की बात करता है तो भी उसमें राजनीति की दुर्गन्ध है। प्यार का भान देता है— देखने में वह आपके साथ भलाई कर रहा है, किन्तु उसमें भी यह राजनीति होती है कि यह आदमी मेरे और मेरी पार्टी के कुछ काम आ सकता है या नहीं।

सन्त पर-उपकार करता है तो यह देखता है कि यह वस्तुतः दुखी है या नहीं—इसके मन में सरलता है या वक्रता। यह जीवन के उत्कर्ष के प्रति आकर्षित है या भोगासक्त है।

इन चोरों से बचें

दूसरों का धन अपहरण करने वाले, सेंध लगाकर धोखे से मनुष्य का द्रव्य चुराने वाले को तो सभी सहज रूप से चोर स्वीकार लेते है, किन्तु शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक श्रम न करने वाला भी चोर है। इन चोरों से सावधान रहना बड़ा मुश्किल होता है। इनकी पहचान होना ही बड़ी बात है। ये नहीं पहचाने जाते हैं। यही कारण है कि सेंध मारने वाले चोर उतने घातक नहीं होते, जितने श्रम से जी चुराने वाले चोर घातक हैं।

सहने की ताकत

हजारों वर्ष से अचल खड़े भीमाकार पहाड़ अतिवृष्टि और ओलों का प्रहार सहते आ रहे हैं। सन्तों के सम्बन्ध में यही एक विलक्षण बात है। आपने सुना है कि वचन के प्रहार असि-प्रहार से कहीं अधिक घातक होते हैं,

यह बात अलग है कि पुरानी पीढ़ी अपने वद्ध संस्कारों के कारण आधुनिक नारी के प्रति तिरस्कार का भाव रखती है, परन्तु सत्य यह है कि जो वस्तुतः नारी है, भले ही वह आधुनिकता के बहाव में बहे, किन्तु मूल रूप में वह नारी होने के कारण नारायणी है।

नारी को हम नारायणी इसलिए भी कहते हैं कि 'मनुष्य जाति में कितने ही पाप हों, वह उसे अपने श्यामल आँचल में ढँक लेती है।" उसे हम नारायणी इसलिए भी कहते हैं कि "माँ बच्चे को मारती है, फिर दूसरे ही क्षण अपने पास बुलाकर अपने वक्ष में छुपा लेती है।"

समवेदना

मानव-दानव का भेद दूर की बात है, किन्तु मनुष्य और पशु में, उनकी समवेदना और स्पंदन में अन्तर है। मानव का पशु-भाव भी एक दिन संपर्कस्थ व्यक्ति की दुःसह पीड़ा से प्रभावित होकर संवेदनशील हो उठता है।

मनुष्य के पशुत्व से हमें भय अवश्य लगता है, परन्तु हम क्यों भूल जाते हैं कि अन्ततः चिंतनशील मानव की दानवता दमित होगी और मनुष्यत्व का दीपक उसके हृदय की निरांजनी में जलेगा-जुपेगा। मानवता प्रकाशित होगी, क्योंकि वह समवेदना का स्वामी है।

धर्मनिष्ठ की कसौटी

धर्म और धार्मिक के सम्बन्ध में सन्तों ने अपने अमर विश्वासों को बड़े सीधे शब्दों में व्यक्त किया है। उसमें कहीं पेंच नहीं, कहीं दुराव नहीं।

उन्होंने कहा :

"जो सम्यक् धार्मिक है, धर्मनिष्ठ है, उसके अन्तर में किसी के लिए धोखा या छल नहीं होगा। घृणा से भरा नहीं होगा। वह मान-मायामय लोभाभिभूत भी होता नहीं दिखाई देगा। ममतामयी माँ पुत्र को असीम स्नेह देती है, उसी प्रकार संसार के समस्त प्राणियों के प्रति उसके मन में वात्सल्य होता है।"

अवलम्ब

खुद तैरता है, दूसरों को तैरने की प्रेरणा देता है, उसे हम "तिन्नाणं तारयाणं" कहते हैं।

जो खुद को डुबाता है और दूसरों को भी ले डूबे, उसे हम 'डुब्वाणं डुब्वयाणं' कहते हैं।

हमें सोचना है अपनी मेधा से कि हम किसका अवलम्ब गहें ?

अज्ञान

चन्द्र और तारक-मौक्तिक रहित रात्रि की कल्पना कीजिए। कितनी भयानक लगती है वह रात्रि।

मानव का अज्ञान जीवन भी इसी तरह भयानक है, कष्टदायक है। चन्द्र और तारक युक्त रात्रि में पथ मिलता है, अन्धकारपूर्ण रात्रि में मानव भटकता है और अनुगामी भी।

अज्ञानी का अनुगामी भी पथ भूला राही है।

हमें किसका संग करना है, सोचने-समझने को इतना काफी है।

गिराने का यत्न होने लगता है। अपनी बात को सर्वोच्च रखने की धुन में तथ्यों को तोड़-मरोड़ भी दिया जाता है।

ये सब दोष जन्म न लेते, यदि मनुष्य सहनशील होता।

सामाजिक असमानता

क्रूरता और असहिष्णुता—ये दोनों ही असामाजिक तत्त्व है। समाज में रहने पर भी जो क्रूर है, असहिष्णु है, वह सामाजिक प्राणी कैसे कहा जाता है? मनुष्यों का समाज कोई ईंट-पत्थरों का समूह तो है नहीं।

सुख-दुःख का संवेदन-स्पंदन, अनुकूल-प्रतिकूल स्थिति का प्रभाव मनुष्य पर न हो सके, उसे सामाजिक प्राणी कहने की अपेक्षा समाज में असमानता को पैदा करने वाला प्राणी कहना ही उचित है।

कथनी-करनी एक तुला पर

वचन की प्रामाणिकता के अभाव में सामाजिक व्यवहार निश्चय ही अस्त-व्यस्त होगा। हर आदमी चाहता है कि हमारा व्यवहार ठीक ढंग से चले, किन्तु इसके लिए वह कथनी और करनी की समानता का पुनः-पुनः मूल्यांकन करे और दोनों को एक तुला पर बराबर माने, तभी यह संभव है।

दो रूप वाली नारी

नर नारायण है, नारी नारायणी। नारी नरक की खान है, तो नर क्या है?

नारी नारायणी तो इस तरह है कि मातृत्व की

मंगल-मूर्ति है। अमृत की अजस्र धारा है। समर्पण की भावना सँजोने वाली कविता है और ममत्व की तो वह साक्षात मूर्ति ही है।

यह तो उसका एक स्वरूप हुआ। सिक्के का एक पहलू?

दूसरा क्या है?

दूसरा रूप उसका अपना निजी रूप है। बहुधा वह छुपा रहता है। उसे बहुत कम लोग जान, देख पाते हैं। उसका दूसरा रूप तब प्रकट होता है जब उसे नरक की खान कहा जाता है।

तब वह अपने स्वरूप को प्रकट करते हुए नर से कहती है कि नारी तो नरक की खान है, परन्तु पुरुष क्या है? नरक से भी बढ़कर कोई वीभत्स स्थान हो सकता है? अगर है, तो पुरुष वही है। यह नारी का दूसरा रूप है। नारी का दूसरा रूप अनदेखा रह गया है। अनंत अतीत से आज तक वह अदृश्य चला आ रहा है और उसका नाम त्याग है। नारी अपने दूसरे रूप में त्याग की भगवती शक्ति है। जब-जब नर पतनोन्मुख हुआ है तब-तब नारी ने पुरुष को संबल दिया है। उसे विपथ से हटाकर सुपथ पर लाया है। यह नारी का दूसरा रूप है और यही उसका अपना सच्चा स्वरूप है। भारतवर्ष का इतिहास सन्नारियों के त्याग का इतिहास है।

क्रोध के परिणाम

क्रोध के परिणामों की शृंखला होती है। वह अकेला

[illegible]

होगा बंद करो और दूसरों पर भी।

घोड़े की दौड़

घोड़ा भागने लगा। लोग देखने लगे। ज्यों-ज्यों तेजी आती गई देखने वालों को बड़ा भला लगा।

लेकिन उस समय सब देखने वाले हतप्रभ हो गये

जब घोड़ा भागते-भागते गिरा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

मनुष्य अविवेक के घोड़े पर सवार होकर जब बेतहाशा भागने लगता है और उस अविवेक की दशा में जो कुछ कर गुजरता है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। विवेकी जन कहना चाहते हैं कि जैसे घोड़ा ठोकर खाकर गिर गया, मनुष्य भी इसी तरह अविवेक के क्षणों में मर जाता है।

मृत्यु निश्चित है

मानव की मृत्यु की उपस्थिति ही चिन्ता का कारण है। विशाल दीर्घाकार महान् पर्वत मृत्यु के झंझावातों से चूर-चूर हो जायेगा। आसमान से बातें करने वाले सुदृढ़ शहतीर निश्चित रूप से टूट जायेंगे। मुष्टि-प्रहार से पृथ्वी-तल से पानी निकालने वाले बलाढ्य व्यक्ति व प्रज्ञावान् मानव किसलय की भाँति सूख जायेंगे।

राष्ट्र की समृद्धि कैसे हो ?

इहलोक के जीवन में भी अपने राष्ट्र को समृद्ध करना है, परन्तु ऐसी समृद्धि की आराधना करते समय पश्चिमी देशों में भोगमूलक दुष्प्रवृत्तियाँ आ गई हैं। उनका सर्वथा त्याग करके अपने शुद्ध सात्त्विक जीवन का विकास करने के लिए ही शक्ति लगाना है।

बन जाते हैं। महापुरुष झुकना जानते हैं, दुर्जन अकड़ना।

कवि

मानव की सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत करने, उनमें नव-चेतना भरने, कर्तव्य का उद्घोष करने में कवि की वाणी समर्थ है।

आपत्ति

जब किसी के ऊपर पतन आ पड़ता है तभी वह सावचेत सावधान हो जाता है। मानव आपत्ति से बनता है, सम्पत्ति उसे राक्षस बना देती है।

प्रताड़ना

मानव अपनी प्रशंसा सुनने को सदा लालायित रहता है। मूर्ख चापलूस प्रशंसा कर ऐसे व्यक्तियों से अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं, किन्तु मूर्खों से अपनी प्रशंसा सुनने की अपेक्षा बुद्धिमानों का उलाहना—उपालम्भ सुनना श्रेष्ठ है।

जीवन

ऐशो-इशरत, मौज-शौक, विलासिता पूर्ण जीवन जीवन नहीं कहला सकता, किन्तु कर्त्तव्यपरायण सात्त्विक विचार रखना ही जीवन है।

गर्व

जो व्यक्ति अभिमान के पहाड़ पर चढ़कर इतराता

निखार

[illegible] अपना स्थान नहीं लेती। निखारपन मानव के अन्तःकरण पर शुद्ध गुणों का निखार नहीं होता। जब गुण ही नहीं तो परमात्मा कैसे बनेगा।

स्वाभिमान

मानव का सबसे बड़ा धन है उसका स्वाभिमान, परन्तु उसमें एक शर्त है कि उसके मन में द्वेष की अग्नि प्रज्वलित न हो। चूंकि द्वेषाग्नि में रत्नों को राख बनाने की शक्ति है।

स्वाभिमान श्रेष्ठ है

मानव अपने धन-दौलत की रक्षा प्राणपण से करता

है, किन्तु चाहिए स्वाभिमान की रक्षा करनी। स्वाभिमान सुलेमान काहूँ के खजाने से अधिक श्रेष्ठ है, पर यह ध्यान रखना होगा कि महत्वाकांक्षा के हाथों में इसकी कुंजियां नहीं जानी चाहिए, क्योंकि चोरों से इस की देवता भी रक्षा करने में असमर्थ है।

स्वाभिमान अमृत है

मानव, तेरा स्वाभिमान अमृत से भरा हुआ एक प्याला है, किन्तु धूर्तता से इसका विरोध है। यदि कोई धूर्तता करता है, तो वह विष बनकर उस पर गरुड़ की तरह झपटता है। हाँ, जहाँ प्रेम और स्नेह है, वहाँ यह शीश अर्पण में भी संकोच नहीं करता।

स्वाभिमान और अहंकार में अन्तर

स्वाभिमान व अहंकार में उतना ही अन्तर है, जितना हाथी और गधे में है, राम व रावण में है। गधा यह सोचता रहता है कि यदि मैं नहीं होता, तो यह डेढ़ ईंट का मानव अपने को ईश्वरावतार घोषित का सुअवसर कहाँ पाता?

बल सार्थक है

यदि तुम अपने बल को नापना चाहते हो—बड़ा है या छोटा यह देखना चाहते हो, तो अपनी इंद्रियों के साथ संग्राम करो। यदि तुम ने उस में विजय प्राप्त कर लिया तो तुम्हारा बल सार्थक है। इन्द्रियों से पराजित हो गये तो बल निरर्थक है।

उपवास

हर कोई उपवास करता है, पर उसका अर्थ नहीं जानता। उपवास का अर्थ भूखे मरना ही नहीं। उपवास का अर्थ है प्रभु के समीप निवास करने की प्रक्रिया। जिस किसी भी शुभ कार्य से, सत्कार्य से जीवन परमात्म-मय बने, उसका नाम उपवास है। जो मानव सात्त्विक, पवित्र मन से ईश्वर स्मरण एवं उनके सतत सान्निध्य में रहता है, उसका ही उपवास सच्चा है, अन्यथा स्वाद-लालसा, जिह्वा-तृप्ति के पोषणार्थ किया गया स्वादिष्ट, पोषक फलाहार सही अर्थों में उपवास नहीं है। शरीर का उपवास से कोई अर्थ नहीं निकलता। मन का उपवास--मन को किसी भी प्रकार की इन्द्रिय-वृत्ति एवं उसकी लोलुपता में फंसने से रोकना मन का उपवास है। मन को सात्त्विक, पवित्र, निर्मल बनाता है।

कृपण

कंजूस से बढ़कर कोई दाता और दानी नहीं, क्योंकि वह बिना स्पर्श किये ही बातों से समग्र धन दूसरों को लुटा देता है।

शारीरिक पाप

अन्य प्राणियों के प्राणों का अपहरण करना, तस्कर-वृत्ति, बलात् परधन का अपहरण करना व परस्त्री से व्यभिचारी जीवन व्यतीत करना—ये तीनों ही शारीरिक पाप हैं। इससे मानव को दूर रहना चाहिए।

वचन पाप

अपने मुंह से अश्लील बातें कहना, अन्यों के हृदय को वेधनकारक, कर्कश और कठोर छेदन-भेदन कारक एवं मर्मान्तक भाषा बोलना, चुगली खाना, असत्य भाषा का प्रयोग करना—ये वाणी के दूषण हैं। इनसे दूर रहना चाहिए।

मन से भी क्यों करें

अन्य के धन को बलात् लेने के लिए उपाय से विरत, समस्त प्राणियों के प्रति मैत्री भाव, स्नेह, सद्भाव रखना आदि शुभ कर्म करोगे, तो शुभ फल अवश्यम्भावी है। यह विचार करके शुभ कर्म करें। इन तीनों का मन में आचरण करें।

पृथ्वी स्वर्ग है

जो सही अर्थों में सचमुच प्रेम करता है, प्राणीमात्र से स्नेह, सद्भाव रखता है, उस मनुष्य का हृदय धरती पर साक्षात् स्वर्ग है। ईश्वर उसी मनुष्य के पास है, क्योंकि प्रेम ही ईश्वर है। प्रेम ईश्वर की प्रतिमा है—निष्प्राण प्रतिमा नहीं, किन्तु दैवी प्रकृति का जीवन्त सार है, जिसमें कल्याण-गुण छलकते रहते हैं।

प्रेम पावन कर्त्ता है

यदि मानव यह कहे कि मैंने प्रेम किया, वह व्यर्थ गया। ऐसा सोचना गलत है। प्रेम कभी व्यर्थ नहीं जाता। यदि उसे प्रीति-दान नहीं मिले, तो वह प्रत्यावर्तित होकर हृदय को पावन एवं मधुर बनाता है।

तेरा मर्म नोच-नोच कर खा जायेंगे। अतः तू अपनी गति से वढ़ता ही चल। याद रख, तेरी गति ही तेरे सुख और दुःख के मध्य का सेतु वनकर तेरे मन के अन्दर रही हुई खाई को पाट देगी।

चिन्तन

पशु घासादि खाने के वाद उसकी जुगाली करता है पचाने के लिए। मानव, तू कितनी ही पुस्तकें क्यों न पढ़ ले, उपदेशादि श्रवण कर ले, किन्तु जव तक उन पर चिन्तन मनन, निदिध्यासन आचरण में नहीं लाया जाता तव तक परिणाम शून्य ही होगा। लाभ मिलने वाला नहीं है।

न हो जिसमें अदव और हो कितावों से लदा फिरता
'ज़फ़र' उस आदमी को हम तसव्वर वैल कहते हैं।

आशावान

मानव, तू अपने मन में निराशा को क्यों आने देता है? उठ, अपनी भविष्य की राह पर, मंजिल को देखकर, कदम वढ़ा, सफलता अवश्यम्भावी है।

अपने गम्य स्थान निर्वाण को देखो।
पापों के कदमों से परे पुण्य के पंख को फैलाओ।
निराशा की वरसात के आँसू को वन्द करो।
उड़ते जाओ, उड़ते जाओ, चलते रहो।
आसमान का अन्त नहीं है।
तो तुम्हारी आत्मिक शक्ति का भी अन्त नहीं है।

उसे गिराने में समय नहीं लगता। मण्डन में समय लगता है, खण्डन में नहीं। प्रतिष्ठा व इज्जत को प्राप्त करने में वर्षों का समय लग जाता है, किन्तु कलंक एक पल में लग जाता है।

अल्प व्यय

मानव, तुम अपने परिश्रम से जितना अर्जन करते हो, यदि उससे व्यय कम करते हो, तो तुम्हारे हाथों में पारस पत्थर है।

कुटिलता

कुटिलता अति सुन्दर मनमोहक होती है। लोग उसकी पूजा करते हैं, किन्तु जब उसकी विषैली जीभ प्रकट होती है तो लोग नागिन की भाँति उसे भी डण्डे से मारने लग जाते है। कुटिल साँप और मानव में अन्तर भी है। कुटिल सर्प अकारण किसी को नहीं काटता, भयावस्था में, जीवन खो जाने की दशा में ही लोगों को काटता है, किन्तु कुटिल मनुष्य अकारण ही मनोरञ्जक दशा में भी काटता है।

अर्थात मानव-मात्र का परम कर्तव्य हो जाता है कि एक दूसरे की सर्वथा रक्षा और सहायता करता रहे।

शिक्षक

मोमबत्ती अपना मुँह जलाकर दुनिया को प्रकाश देती है। शिक्षक अपने-आप की पर्वाह न करके विद्या अर्जक को ऊर्ध्वगामी बनाता है।

अपने आराध्य का अपमान फूल-माला नहीं सह सकी। मूर्ति तो क्षमाशील स्वभाव के कारण शान्त थी। फूल-माला बोली — समय बदल जाता है, पर स्वभाव नहीं बदलता। सत्संगति से कोयला हीरा बन जाता है, लोहा सुवर्णमय बन जाता है, किन्तु संस्कारों को विधाता भी परिवर्तित नहीं कर सकता। तेरा स्वभाव ही मक्खियों को उड़ाने का है। पूँछ का आदतन कार्य है मक्खियां

को उड़ाने का—चाहे वह फिर देवता के सिर पर फहरे या जानवर के सिर, पर तुम्हारी पूजा-प्रतिष्ठा तो देवता के कारण है।

मुकुट ने कहा—बहिन फूल-माला, तू किससे उलझ पड़ी है? संस्कारों से उलझना दीवारों से सिर फोड़ना है। चँवर की जो प्रकृति है, वह तो सदा कायम रहेगी। सिर के बालों में व पूँछ के बालों में अन्तर है। सिर का बाल मुकुट कहलाता है, शोभाजनक है, पूँछ का बाल मक्खियाँ उड़ाता है।

कनक मंढ्यों नरवर चढ्यो ढूल्यो सीस भूपाल
पर कति रहिते जात की वही पूँछ को बाल।

घृणा

मानव, यदि तू घृणा करना चाहता है तो अपने दुर्गुणों की कर। सद्गुणों की, सच्चाई से घृणा करेगा, तो औंधे मुँह गिर जायेगा। आसमान पर थूकने वाले सोच, आसमान का कुछ भी बिगड़ेगा नहीं, तेरा ही मुंह खराब होगा।

कृतघ्न

अकृतज्ञ और परदोषान्वेषी को आप अपनी समस्त सम्पत्ति दे दें, पृथ्वी का राज्य-भार दे दें, किन्तु उससे उसको संतोष नहीं हो सकता। वह अपनी प्रकृति से लाचार है।

अकृतज्जुस्स पोसस्य,
निच्चं विवरदस्सिनो।
सव्वं चे पठविं दज्जा,
नेवं नं अभिराधये।

कृतघ्न

अन्यों के द्वारा किये उपकार को न मानने वाले कृतघ्न की यह प्रकृति होती है कि जिसके द्वारा उसे यश, कीर्ति, प्रशंसा मिलती है, सर्वप्रथम उसी को वह मिट्टी में मिलाने का प्रयत्न करता है।

जेहि ते नीच बड़ाई पावा।
सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा॥

—तुलसीदास

महाशक्ति

जिस शक्ति का पर्याय राजसत्ता नहीं है, जो एक क्षण भी असत्य और अनीति को सहन नहीं कर सकती, भ्रान्ति जिसके सामने आने का साहस नहीं कर सकती, जिसके आगे भीरुता या क्लीवता ठहर नहीं सकती, उसी शक्ति को—महाशक्ति की आराधना-अर्चना की जाये, उसी महाशक्ति द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर हमें चलना होगा। उस पथ पर कोई भय नहीं, डर नहीं, न कोई अमंगल की सम्भावना है।

ज्ञान-विज्ञान

ज्ञान और विज्ञान की परिभाषा में महान अन्तर है इन्द्रियों और मन की सहायता से प्राप्त जो साधारण ज्ञान वैयक्तिक, क्षणिक, सामयिक और सापेक्ष हैं, उसका बोध वैयक्तिक होता है, निराकरण भी होता है। विज्ञान विशेष रीति, निरीक्षण व प्रयोग द्वारा प्राप्त वह ज्ञान है जो सर्वमान्य, सब कालों व स्थानों पर अव्याबाध अबाधित

है और निश्चित है, जिनके द्वारा वस्तुओं का स्वरूप का इतना ज्ञान हमको हो जाता है कि हम उसका उपयोग कर सकें। वह ज्ञान वैयक्तिक नहीं, बल्कि सार्वभौम है।

सच्चा ज्ञान

समग्र ज्ञान का तात्पर्य जीवन के व्यवहार से है। सच्चा ज्ञान वही है, जो अपने ज्ञान के अनुरूप जीवन बनायें। चूँकि समग्र शास्त्र क्रियाओं को प्रेरित करने के लिए ज्ञान है। जो ज्ञान व्यावहारिक न हो, व्यर्थ है।

दर्शन और ज्ञान

दर्शन शास्त्र के ज्ञान के बिना नीति शास्त्र अपूर्ण है, क्योंकि दर्शन शास्त्र का पर्यवसान नीति में है और नीति का आधार दर्शन है। दर्शन ज्ञानेन्द्रिय है, तो नीति कर्मेन्द्रिय। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

पुरुषार्थ

जीवन की आर्थिक व आध्यात्मिक उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को सतत परिश्रमशील रहना होगा, क्योंकि बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है, उठ खड़े हुए का उठ खड़ा होता है। टाँग पसार कर सोने वाले का ऐश्वर्य भी सो जाता है। चलने वाले पुरुषार्थी के पीछे-पीछे ऐश्वर्य भी पदानुशरण करता हुआ चलता है।

जीवन संग्राम है

जिस प्रकार दुर्गम पहाड़ों से निकलने वाली नदी मार्ग में अनेक पहाड़ियों व घाटियों को पार करती हुई

अपने आराध्य समुद्र से मिलने के लिए दौड़ती है, उसी प्रकार जीवन भी संग्राम है। वह अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने लिए मार्ग में आगत बाधाओं को नष्ट कर देता है।

मित्रो, उठो !

नदी को पार करने के लिए पुल की आवश्यकता है। उसी प्रकार संसार रूपी नदी को पार करने के लिये यम, नियम, महाव्रत के पुल की आवश्यकता रहती है। अतः मित्रो, उठो ! पथरीली नदी को पार करना है। उठो, होश में आओ। जो इस कल्याणमयी पंथ के बाधक हैं, उनका साथ छोड़ो। कल्याणकारी व आनन्ददायक शक्तियों को साथ लो।

भगवानमय

भगवान हमारे हैं, हम भगवान के हैं। भगवान हमसे दूर नहीं हैं, आवश्यकता है सिर्फ उनके पास जाने की। जब हम कषायों का, राग-द्वेष का परिहार कर देते हैं तो स्वयं तद्‌रूप हो जाते हैं—उतनी ही शक्ति अर्थात् भगवान की शक्ति हम में स्वयं आ जाती है। हम स्वयं भगवान् बन जाते हैं।

अतिथि सेवा

अज्ञानी मानव व्यर्थ अन्न को एकत्रित करता है। यह एकत्रित अन्न ही उसका नष्ट कारक है। वह संग्रहीत अन्न न अतिथि को देता है, न ज्ञातिजन व मित्रों को। अकेला खाने वाला पापही करता है, पापियों की श्रेणी में आता है।

मैत्री भाव

संसार में जितने भी प्राणी हैं, उनमें मैत्री भाव है।

एक दूसरे को प्रेम व स्नेह से देखें, सभी के लक्ष्यों में समानता व साहचर्य का भाव विद्यमान हो, सभी प्राणियों से प्रेमपूर्वक बोलें, सभी का मन ज्ञानवान हो, एक मन हो, एक चिन्तन हो, एक ही ध्येय हो। यही मैत्री भाव है।

विवाह-सम्बन्ध

पतिव्रता नारी को विवाह के समय का यह मंत्र लक्ष्य में रखना चाहिए कि सौभाग्यवती नारी के लिए पति ही सर्वस्व होता है। अतः वह अन्त तक उसका साथ देती रहे।

विवाह वचन

कन्या, तू श्वसुरालय को जा रही है। वहाँ तू श्वसुर की साम्राज्ञी हो, अपने सास की साम्राज्ञी हो, अपने ननद-देवरों की साम्राज्ञी हो व अपने हृदयेश्वर पति की हृदयेश्वरी हो।

सुखकर आचरण हो

कर्मण्य व आदर्श पुरुष घर का, समाज का, देश का दीपक है, अतः उसे कर्मठ होना चाहिए। वह गृह-कार्यों में दक्ष हो। समाज में प्रिय, सामाजिक कार्यों में अग्रगण्य, सभादक्ष, अपने यशस्वी कार्यों से पिता की कीर्ति चतुर्दिक विस्तृत करने वाला हो।

निर्भय हो

संसार में जितने भी प्राणी हैं, वह स्वयं से, मित्रों से, पड़ोसियों से व प्राणीमात्र से निर्भय बने रहें। न उससे किसी को भय, न उसको किसी से भय—सर्वत्र निर्भय।

तप

अपने-आप को जो धर्म और राष्ट्र के लिए देता है वही तप है। तप के द्वारा निश्चय ही लोक में विजय प्राप्त किया जाता है।

मानव महान

वैसे तुम चेतनमय आत्मन् हो, तुम प्रबुद्धशील ज्ञानी हो, तुम स्वयं कर्त्ता-विकर्त्ता हो, तुम हो अपने-आप में अभिमानी, लेकिन तुम्हें देखकर मुझे आश्चर्य है ! स्वभाव से कितने भोले, ऊपर से अकड़कर चलने वाले ठोस दिखते हो, पर कितने पोले हो ! वनकर मिट जाने की तुम्हारी अपनी एक कहानी है।

सहयोग

पशु-जगत् अपने साथियों के रक्षार्थ समूह बनाकर कटिबद्ध होकर तत्पर हो जाता है। मानव ! तू विचारशील वीर है, तो तेरा परम कर्त्तव्य है कि एक दूसरे की सहायता, सहयोग व रक्षार्थ सदा तत्पर रहे।

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।

ऋग्० ६।७५।१

सहयोग

गृहस्थो ! तुम्हारे पारिवारिक जीवन में परस्पर ऐक्य सौहार्द और सद्भाव होना चाहिए। द्वेष की गन्ध भी न रहे, ईर्ष्या को स्थान न मिले। जिस प्रकार नवजात बछड़े से गाय प्रेम और स्नेह करती है, तुम उसी प्रकार परस्पर प्रेममय व स्नेहमय सद्व्यवहार करो।

वृद्ध

शरद् ऋतु में काले मतवाले बादल कपास के समान शुभ्र धवल हो जाते हैं, वृद्धावस्था में श्यामकेश फिर भी धवल हो जाते हैं। बुढ़ापा शरीर की शोभा को बिगाड़ देता है।

नभो न रूपं जरिमा मिनाति
ऋग्-संहिता (१।७१।१०)

सत्य

सूर्य तम को विनष्ट करता है तो असत्य जीवन की चादर को कलुषित कर देता है। असत्य प्रतिष्ठा की ज्योत्स्ना को कालिमा युक्त कर देता है, सत्य का सूर्य उसके जीवन को प्रकाशमय बना देता है।

यह समस्त सृष्टि सत्य के आधार पर ही अव-स्थित है।

चित्त

दूसरे के मन में क्या है, क्या विचारधारा है, यह कैसे जाना जा सकता है? 'अन्यस्य चित्तमभिसंचरेण्यम्' अर्थात् दूसरे के चित्त के विषय में क्या कहा जा सकता है? वह तो नश्वर व चंचल है।

बराबरी का सामना

किसी अपाहिज पंगु से यदि सामना के लिए आह्वान किया जाये तो वह क्या सामना कर सकेगा? सामना बराबरी का होता है। तभी तो शक्ति-सन्तुलन कायम रह सकता है; क्योंकि घोड़े के साथ घोड़े की ही प्रति-योगिता कराई जा सकती है, घोड़े से निम्न की नहीं। गधे को घोड़े के आगे स्थान नहीं दिया जा सकता।

आशा

निराशावादी मानव अपनी उन्नति कदापि नहीं कर सकता। आशावादी मानव अपनी आशावादिता के आधार पर ही उन्नति कर सकता है।

संगठन

संगठित प्राणियों का कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। संगठित परिवार व समाज का कोई बाल-बाँका भी तो नहीं सकता। अतः तुम सब मिलकर चलो, सहयोग से कार्य करो।

दोनों हाथ

मानव के दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है, तो बायें हाथ में विजय—सफलता निश्चित है।

अडिग भाव

मानव, तेरे पर कठिनतम संकट भी आ जाये, प्राणान्तक परिस्थिति भी उत्पन्न हो जाये, तो भी तू अपने सन्मार्ग से विचलित मत होना।

चिन्तन

हमें प्राणीमात्र की, चाहे वह किसी भी योनि का हो, जैन हो अथवा बौद्ध, सभी की भलाई का चिन्तन करते रहना चाहिए।

कर्मशील

उद्यमशील प्राणी का भी प्रथमतः अपने हाथ में नहीं लेता, यदि लेता है तो उसे पूर्ण करके छोड़ता है।

पाप

जिस प्राणी ने किसी एक पाप को कर लिया, उसकी झिझक दूर हो गई। फिर तो अन्य पापों में भी उसकी प्रवृत्ति हो जायेगी।

श्रद्धा

जीवन-यज्ञ में श्रद्धा मानो पत्नि है और जीवन सत्य। यजमान श्रद्धा भावना मूलक है तो सत्य बुद्धि मूलक है। इन दोनों की उत्तम जोड़ी है। श्रद्धा और सत्य के संयोग से मानव अपना कल्याण करता है।

सत्ता

विद्वान् मानव या अन्य मानव कोई सत्य बात कह भी देता है तो लोग अनायास उस पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि जो सत्ता और श्रेष्ठता को पा लेता है, लोग उसी की बात पर विश्वास करते हैं।

जीने का प्रयत्न

शान्त व प्रशान्त वातावरण मानव को अच्छा व सुख-कर लगता है। इस प्रकार सदाचार के मार्ग पर चलते

अमृतभोजी

जो सतत आत्म [illegible] करते हैं, उनके मन में निर्मलता बनी रहती है, उनको हम अमृतभोजी कहते हैं अर्थात् [illegible] द्वारा ही मनुष्य अपने अमृततत्त्व या शाश्वत जीवन को प्राप्त करते हैं—परम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मचर्य

मनुष्य के जीवन का ब्रह्मचर्य ही उत्तम सारवान पदार्थ है, क्योंकि ब्रह्मचर्य नाना प्रकार की आधि-व्याधियों से खिन्न मनुष्यों की परमौषध है—निराशा का समाधान है।

दुःख-सुख

यह देखा जाता है कि पंक से कमल की उत्पत्ति है, रात्रि का अवसान दिवस का प्रारम्भ है, ज्येष्ठ मास की प्रचण्ड गर्मी के पश्चात् ही वर्षा का आगमन होता है, विद्युत का जन्मस्थान मेघ है, शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ से कृष्ण पक्ष का अन्त होता है, काँटों से व्याप्त पौधों में सुन्दर पुष्पों का उद्गम है।

रोग के बाद ही स्वास्थ्य-लाभ होता है, दरिद्रता की समाप्ति से सम्पत्ति का पुनरागमन होता है, कष्टमय तप से ही सिद्धि प्राप्त होती है। जब सर्वत्र ऐसी परिस्थितियाँ देखी जाती हैं तो दुरवस्था में घबराने से फायदा क्या? अतः समग्र दुरवस्था अच्छी स्थिति आने का पूर्वाभास है। दुःख का आगमन भी कल्याण के लिये है, यह सोच कर

केवल स्वप्न है संसार

ससार केवल स्वप्न है—और कुछ नहीं।

कैसे ?

ठीक ऐसे, जैसे सन्ध्या का समय है, सूर्य अवसान के निकट है, दिन-भर वादलों में स्थिरता थी, वह अब अनेक रंगों और दृश्यों में वदल रही है, सूर्य की तेजी तिरोहित होती जा रही है, रंग-विरंगे वादल वन रहे हैं, मिट रहे हैं।

सूर्य की रोशनी पृथ्वी पर और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर, मकानों की चोटियों और मीनारों पर लाली पोत रही है—यह सव कुछ हो रहा है।

समय क्षण-क्षण नष्ट हो रहा है। वक्त का एक गोला अतीत में सिमट गया।

अव देखिये। सूर्य के वे सारे रंग, वादलों के वे सव रूप कहाँ गये ? रात्रि घिर आयी। सव कुछ काली अँधियारी रात्रि में वदल गया।

आप जो कुछ देख रहे थे, वह कहाँ गया। दिखा सकते हो हाथ में लेकर—नहीं।

तो संसार ठीक ऐसा ही है। केवल स्वप्न के अलावा संसार के पास कुछ नहीं है। स्वप्न देखकर आप जागते हैं, तो आपके हाथ में कुछ नहीं होता। मनुष्य के पास भी कुछ नहीं रहता। कल्पना के भव्य भवन भी नष्ट हो जाते हैं और एक दिन मनुष्य की यह माटी की काया भी माटी में मिलकर अस्तित्व-विहीन हो जाती है।

मनुष्य ने संसार से क्या पाया? कुछ भी नहीं। आत्मा के पारखी मुनियों ने संसार की ओर पीठ की, आँखें मूँदी और आत्मा को पाया।

उन्होंने कहा है:

"इस क्षण-क्षण नष्ट होने वाले संसार के सब कुछ नष्ट होने के लिए हैं। तुमने आत्मा की आवाज सुन ली तो पा जाओगे, अन्यथा हाथ मल कर रह जाओगे—खाली के खाली, क्योंकि संसार तो केवल स्वप्न है और कुछ भी नहीं।"

बहुत बड़ी भूल है जिंदगी की

जिंदगी की पहली सांस से आज तक—आज के बाद कल। कल फिर आज और फिर कल, ये होते और बनते-मिटते देखते-देखते हम भी कल पर विश्वास करने लगे हैं।

यह जिंदगी की बहुत बड़ी भूल है।

वनवास के दिन थे। युधिष्ठिर अपनी पर्णकुटी के बाहर बैठे थे।

एक भिक्षु आया। भिक्षापात्र बढ़ाया। बोला: "इसमें कुछ दे दो।"

युधिष्ठिर ने कहा : "कल आ जाना, कल ले लेना, कल दे दूँगा, आज नहीं।"

भीम मौन बना सुनता रहा। फिर बड़े जोरों से ठहाका मार कर खूब हँसा — खूब हँसा। कुटिया में भाग कर गया। एक घंटा उठा लाया। घंटा बजाता हुआ गाँव की ओर भागने लगा।

युधिष्ठिर गुस्से से भर गये। कहा : "भीम, तू पागल तो नहीं हो गया? कहाँ भागा जा रहा है—घंटा बजाते?"

भीम ने कहा : "पागल क्यों होता? मुझे आज बेहद खुशी हो रही है। मैं अपनी इस खुशी को अन्दर में नहीं समेट पा रहा हूँ, इसलिए जल्दी से जल्दी ग्रामवासियों को कहना चाहता हूँ कि मेरे भाई ने इतिहास की एक बहुत बड़ी विजय पा ली है। वह काल पर विजय प्राप्त कर चुके हैं और उन्होंने आज की बजाय कल देने का वचन दिया है।

"मैंने आज तक यही जाना था कि जो कुछ हो सकता है, वह आज ही हो सकता है, कल नहीं। इतिहास में यह एक अनहोनी घटना घटी है, इसलिए इस खुशी को मैं ग्रामवासियों में बाँटना चाहता हूँ।"

कल कल्पना है—असत्य है। कल कभी नहीं होता, कल कभी नहीं आता। जो आता है वह आज है, अब है, इसी क्षण है—फिर कुछ नहीं।

लेकिन जो अभी हो सकता है, उसे हम कल पर छोड़ते जाते हैं। हमारा मन कल में जीता है। आज तंद्रा में रहना चाहता है।

अपराध-मुक्ति

दुष्कर्म करने का कुविचार मस्तिष्क में कौंधा, किन्तु आप सामाजिक अप्रतिष्ठा, राजदण्ड के भयवश या अन्य किसी कारणवश दुष्कर्म में प्रवृत्त होते-होते ठहर गये। यह ठीक हुआ। यह ठहराव एक दिन आपको दुष्कर्म से मुक्ति दिलाएगा।

स्वयंभू

ईश्वर में विलीन होने की बातें बहुत सुनी हैं—जीवन में अब।

लेकिन इस विलीनता का सही अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर नाम के तत्त्व-विशेष में खो जाना। ईश्वर में विलीन होने का अर्थ है आत्मा का अपने शुद्ध चैतन्य स्वर में विलीन होना, यानी अपने को पाना।

ईश्वर कोई वृहदाकार शरीर नहीं है, जिसमें आत्मा विलीन हो। यही देहधारी आत्मा शुद्ध आचरण द्वारा समस्त बाह्य जगत की क्रिया समाप्त कर देता है, वही उसका ईश्वरत्व है। इसी अवस्था की प्राप्ति को ईश्वरत्व की प्राप्ति या लयावस्था कहते हैं। यह अवस्था कोई दूसरा कान पकड़ कर हमें प्राप्त नहीं कराएगा, हम स्वयं ही प्राप्त करेंगे, तभी प्राप्त होगी और तभी हम स्वयंभू होंगे।

गलत ! गलत ! गलत !

जिस कार्य के कर गुजरने पर अन्तरात्मा तुम्हें गलत-गलत कह कर धिक्कारने लगे, वे सब कार्य निषेध कोटि

के हैं। इनसे आत्मा कर्मबन्धन में आबद्ध होती रहती है। बन्धन की ग्रंथि घुलती रहती है और आत्मा कठोरतम बंधनों में आबद्ध होता चला जाता है।

वासना और प्रेम

वासना और प्रेम में कांच के टुकड़े और बहुमूल्य रत्न की तरह साफ-साफ अन्तर है।

वासना देह के कोच तक पहुंच कर अटक जाती है। प्रेम देहातीत होता है। दोनों का लक्ष्य अर्पण अवश्य है, परन्तु लक्ष्यवेध में बड़ा अन्तर है।

सुख की खोज

सुख और शांति की तलाश मानव ने इस धरती पर आंखें खोलीं, उसी दिन से शुरू कर दी है। लगता है, सुख की खोज करते-करते मनुष्य थक चुका है। ऋषियों की पारगामी दृष्टि ने इस सत्य को अनावृत करते कहा।

शांति यहां भी नहीं मिली,
शांति वहां भी नहीं मिली।
हृदय-देश में शांति छुपी थी,
शांति जहां की तहां मिली।

लाभ और लालसा

लाभ और लोभ की होड़ में अंततः संतोष की ही विजय होती है।

लाभ होने पर लोभ जागता है। लोभ होने पर 'और अधिक और अधिक' की अन्तहीन लालसा जन्म पाती है। इस लालसा को अंतहीन इसलिए कहा जाता है कि आकाश

प्रार्थी चौंक उठा। बोला: "मेरा परमात्मा कहाँ चला गया? मैं अभी अपने परमात्मा को देख रहा था। वह मुझसे बातें कर रहा था। मैं उससे बातें कर रहा था।"

प्रार्थी एकाग्र होता है, तो उसका इष्ट उसके सामने होता है अथवा यों कहें कि उसे अपने स्वरूप की पहचान होने लगती है। इस प्रक्रिया को ध्यान की लयावस्था कहा जा सकता है। शब्दों द्वारा, वाणी द्वारा, स्तुति द्वारा हम अपने आराध्य को आवाज देना चाहते हैं, यह कभी संभव नहीं है। उसे पाने के लिए खुद में खो जाना जरूरी है। गिरजाघर में बैठा प्रार्थी भी अपने में खो गया, तभी वह नौकर द्वारा हस्तक्षेप करने पर भौंचक्का होकर अपने परमात्मा को पुकार रहा था।

सार्थक प्रार्थना

प्रार्थना की वास्तविकता है जीवन की सफल प्राप्ति। जीवन के लिए आध्यात्मिक तत्त्व भी उतना ही अनिवार्य है जितना कि भौतिक तत्त्व।

अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य कि वह अपने अन्दर में सोई हुई मानसिक गतिविधियों को पुनर्जीवित करे। जब मन की गतिविधि जीवन के संलक्ष्य की ओर हो जायेगी, तो उसकी प्रार्थना भी सार्थक हो जायगी।

भोग के काँटे

भोगों को भोगा। क्या पाया? शरीर गँवाया। भविष्य को भुलाया। वर्तमान को बेचैनियों में बिता-

खिला कर, खरीद कर दिया। हाथ क्या आया? कुछ नहीं। तो भोगों ने तुम्हें क्या दिया? काल ने एक दिन तुम्हें भी भोग लिया, यही न? सच है, भोग में सुख ने आखिर तक कांटे ही कांटे हैं।

ध्रुव सच्चाई

अनंत वर्ष बीत गये और अनंत वर्षों का कालक्रम बीतता रहेगा, इसके बीच में एक ही ध्रुव सत्य है—मनुष्य मरता रहता है, परन्तु वह कालजयी सत्य को नहीं देख पा रहा है।

सत्य अमर है, वह नहीं मरता—जो अपने प्रति सच्चा है वह सबके प्रति सच्चा है। जो अपने प्रति, अन्तर्नाद के प्रति सच्चा नहीं है, वह त्रिकाल में भी दूसरों के प्रति सच्चा नहीं हो सकता।

स्वयं बंदी

मैंने देखा, आपने भी देखा होगा। मकड़ी जाल बुन रही है। बुनते-बुनते वह स्वयं ही उसमें बंध जाती है।

मैं सोचता हूं, आप भी सोचिए—मानव भी तो यही करता है। वह अपने माया-जाल में दूसरों को फंसाना चाहता है, किन्तु खुद-ब-खुद उसमें बंध जाता है।

किंपाक फल

मछली पानी में निःसंकोच स्वच्छन्द विचरण करती है, किन्तु खाद्य की खोज में वह आटे की गोली को लपकती है। मुंह खोलती है, परन्तु मुंह खोलने से पहले वह एक क्षण भी यह विचार नहीं करती कि इस गोली में

अंतर-बाहर एक समान

महावीर ने एक दिन साधक को उद्बोधित करते हुए कहा था :

"साधक,

अन्तर और बाहर का भेद मिटा दे।

जो मन में रहा है, उसे बाहर प्रकट होने दे।

जो मन में हो रहा है, उस पर पर्दा मत डाल।

और

साधक,

अन्तर और बाहर में तू ने यह जो भेद की, द्वैत की दीवार खड़ी कर दी है, उसे भूलुंठित हो जाने दे।

साधक उस समय तुझे एक नया प्रकाश, नयी अनुभूति और अलौकिक सुख का सूर्य उदित होता दिखाई देगा।"

घृणा तुम्हें मारेगी : सावधान

घृणा मनुष्य को मार देती है। घृणा जिससे की जाती है, उसकी ओर से, उसके प्रति आपके मन से दुर्भाव की गन्ध निरन्तर निकलती रहती है। उससे आप प्रेम तो कर ही नहीं सकते, क्योंकि उसके प्रति आपके मन में घृणा भरी है।

आत्मवेत्ताओं का कहना है कि यही घृणा एक दिन तुम्हारी अन्तरात्मा का अन्त कर देती है। घृणा से घृणित को नहीं जीता जा सकता है। यहाँ घृणा की बनिस्बत उदासीनता फिर भी श्रेष्ठ है। उदासीनता से नवकर्मास्रव रुक जाता है। घृणा से कर्मास्रव का क्रम जारी रहता है।

पता है, जिससे घृणा करते हैं, उसकी बरबादी का चिन्तन आपके अन्तर में शुरू हो जाता है। बदले की भावना भी जन्म पा जाती है। बर्बादी का चिन्तन घृणित के प्रति होता है। ठीक उसी समय आपकी अपनी निजी बर्बादी भी प्रारम्भ हो जाती है।

इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष हानि भी शुरू होती है, जिसे देखकर भी मनुष्य आँखें मूँद लेता है। घृणा और ईर्ष्या से मन दुर्बल हो जाता है। हृदय संकीर्ण और चित्त दुखी हो जाता है। चित्त निरन्तर दुखी रहने से रक्त की गति बिगड़ जाती है, परिणाम-स्वरूप अनेक बीमारियाँ आ घेरती हैं—अकेली केवल एक घृणा से।

तुम जीवित रहना चाहते हो ?

तुम सचमुच जीवित ही रहना चाहते हो, तो इसे

याद रखकर चलो :

अतीत के गीत गाना बन्द करो। कोरे कल्पनालोक में विचरण करना बन्द करो। आज जो करना है, उस पर सोचो, उसी के लिए चलो।

जीवित रहने के लिए यह जरूरी है।

तुम सहिष्णु बनना पसन्द करते हो, तो अनुशासन में आबद्ध होना सीखो। तुम जीवित रहना चाहते हो तो परिवर्तन की कला सीखो—परिवर्तन की मर्यादा को सीखो।

तुमने यदि वर्तमान पर चिन्तन करना शुरू कर दिया है, तो निश्चय मानो कि तुम्हारा वर्तमान उज्ज्वल होता जा रहा है।

और यदि तुमने अपनी भूलों को देखने, सुनने, स्वीकार करने की क्षमता प्राप्त कर ली है, तो तुम सचमुच जीवित हो।

जीवित धर्म वह है, जो सम-भाव का गायक है। विचारकों के विभिन्न विचारों को सुन सकता है। समन्वय का स्वर ढूंढने वाला धर्म जीवित धर्म है। जो धर्म सम्प्रदायवाद को जन्म देता है वह मृत धर्म है। हम मृत धर्म की बात नहीं करते, जीवित धर्म की बात करते हैं।

दूसरों को भी सुनिए

बहुत से ऐसे हैं, जो दूसरों को सहन नहीं करते अर्थात् दूसरों के विचारों को, मान्यताओं को, चिन्तन को सुनना ही नहीं चाहते। स्वस्थ धर्म-दृष्टि कहती है कि

दूसरों की सुनो — उस पर भी विचार करो, समन्वय साधो, सचाई का रूप खोजो।

अपनी सहिष्णुता को इतना दुर्बल क्यों बनाते हो कि दूसरों को सुना ही न जाय। दूसरों को सुनना भी एक कसौटी है सच्चे धार्मिक की।

यदि मनुष्य धार्मिक होता

यदि मनुष्य वस्तुतः धार्मिक होता तो इतिहास में असहिष्णुताजन्य जो युद्ध की होली खेली गई है— इतिहास में जो कालिमा अंकित है, वह न होती। क्योंकि धर्म का स्वरूप समता है।

जिसमें समत्व नहीं, मानवता के प्रति ममत्व नहीं, राग-द्वेष अथवा प्रिय-अप्रिय में माध्यस्थ भाव नहीं है, वही युद्ध की ओर अभिमुख होता रहा है। अतः हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि सच्चे अर्थों में मनुष्य ने धार्मिकता को अपने हृदय में आज तक प्रतिष्ठित ही नहीं किया है।

वैर से वैर की शृंखला उसने इस तरह पैदा की है— जातीय से क्षेत्रीय क्षेत्रीय से प्रान्तीय और फिर राष्ट्रीय भेद के वैर को जन्म दिया।

भाषागत भेद बनावटी है, जातिगत आग्रह बुराई है— यह जानते हुए भी जातीयता का पोषण करता रहा। अपनी जाति पर गर्व और दूसरी जाति का तिरस्कार करता रहा। क्षेत्र, प्रान्त, राष्ट्र और भाषा के माध्यम से वह व्यक्ति-व्यक्ति में वैर के बीज बोता रहा। मानव की वास्तविक अखण्डता को काल्पनिक सिद्धान्तों के आधार

कदम दर कदम

तुम कदम दर कदम चलते हो न?

हाँ।

तो फिर हर कदम से पूछो कि वे कहाँ जा रहे हैं? यों कहें कि तुम स्वयं किधर जा रहे हो? इस तरह दिशा का भान होगा, तो न भटकाव होगा और न विपरीत लक्ष्य का पश्चाताप।

दिशाहीनता के दुर्योग से और विपरीत लक्ष्य के पश्चाताप से बचने के लिए आवश्यक है कि तुम कदम दर कदम से यह पूछ कर चलो कि तुम किधर जा रहे हो?

ज्ञानी धैर्य से अज्ञानी रोकर

जब तक संसार में मानव है, दुःख और सुख तो निरंतर लगे ही रहते हैं। ज्ञानी पर मुसीबतें आती हैं तो वह हँसकर उनका स्वागत करता है। अज्ञानी रो-रो कर उनको सहता है।

परिणाम क्या होता है? ज्ञानी तो आगे के लिए कर्म-बन्धों की शृंखला को तोड़ता चलता है और अज्ञानी कर्मों का नया-नया बंध करता चलता है।

मेरी यात्राओं में एक दोहा गुजरात के किसी एक गांव से मिला था। यह साधारण आदमी ने कहा था, किन्तु इसमें बड़ा गाम्भीर्य था। मैंने इसे अपनी गांठ में बांध लिया। यह बड़ा काम देता है। मुझे ही क्यों, आप को, हम सबको। दोहा है :

ज्ञानी के अज्ञानी जन, सुख-दुख थी रहित न कोय,

ज्ञानी वेदे धैर्य थी, अज्ञानी तेने वेदे रोय।

पूर्णात्मा

जैन परिभाषा के अनुसार मनुष्य को एक दिन पूर्ण-पुरुष होने का वरदान प्राप्त है। उसके लिए कहा गया है :

जिस आत्मा ने अन्तरहित अनादि काल से अस्तित्व-वान राग-द्वेष, काम-विकार आदि समस्त पर-भावों पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली है, जिसका ज्ञेय पूर्णत्व को प्राप्त हो चुका है, जिसने लोकालोक का भेद जान लिया है, जिनके लिए अब न कोई ज्ञातव्य है और न ध्यातव्य, वह पूर्ण पुरुष है। उसे केवली या अर्हन्त के नाम से अभिहित कर सकते हैं।

उक्त प्रकार से पूर्णता प्रत्येक आत्मा प्राप्त कर सकती है। इसके लिए बहुत आवश्यक शर्त रखी है कि वह उपर्युक्त सभी प्रकार की विशेषताओं से मंडित हो जाय। बस, फिर पूर्णता प्राप्त करने में कोई कमी शेष नहीं रह जाती है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इस प्रकार [illegible] कोई मौलिक अन्तर नहीं है ।

सावद्य भाषा निषिद्ध क्यों ?

मौन सत्य है । साधना में सत्य न हो तो वह निरर्थक है । इसलिए मौन महत्त्वपूर्ण भी है, किन्तु इसका एक यह भी तो पहलू है कि जीवन-यात्रा केवल मौन के बल पर ही नहीं चल सकती । वाचा की गोपनीयता अच्छी बात है, किन्तु सदा ओठ सी कर भी तो नहीं जीया जा सकता है !

महावीर ने कहा था :

"नहीं, तुम्हें मुँह सी लेने को कौन कहता है ? जहाँ बोलना जरूरी है, वहाँ बोलना ही चाहिए । केवल एक बात का ख्याल रखना है कि तुम्हारी वाणी में सावद्य का अंश न आ पाये । तुम्हारी वाणी से किसी का अन्तर-

मानस न छिन जाय। तुम्हारे बोलने से परिवारों में विभक्त न हो जाय। तुम्हारी वाणी क्लेश पैदा न कर दे। तुम्हारी वाणी व्यक्ति-व्यक्ति में भेद न पैदा कर दे—चाहे फिर वह वाणी का कथन सत्य ही क्यों न हो।"

सावद्य भाषा का निषेध इसीलिए किया गया है कि सत्य होते हुए भी वह कर्मबन्ध की परम्परा को जारी रखती है। साधक को इस कर्मग्रन्थि को भेदना है, नष्ट करना है—इसका समूल उन्मूलन करना है।

साधक का मौन आस्रव को रोकने के लिए होना चाहिए। मौन का भंग संवर के लिए हो और उसका प्रत्येक कर्म निर्जरामूलक हो।

त्याग

त्याग की परिभाषा करते समय व्यक्ति-विशेष को माध्यम नहीं माना गया है। मात्र इतना ही कहा गया है कि अपने अन्दर से जिसने वासना को निकाल दिया है, वह त्यागी है, संन्यासी है।

निरर्थक

धन निरर्थक है, व्यक्ति भी निरर्थक है। धन को निरर्थक इसलिये कहा जाता है कि उसके द्वारा श्रेष्ठ कार्य मनुष्य ने नहीं किया, अतः उसके द्वारा अर्जित धन निरर्थक हुआ। व्यक्ति निरर्थक इसलिए है कि पोथी पढ़-पढ़ कर ज्ञान संग्रह तो करता जा रहा है, किन्तु आचरण को भूल चुका है।

मंगलाचरण ही क्यों ?

किसी भी कार्य को करने से पहले मंगलाचरण की जो भारतीय परम्परा है वह वैसे ही चली आ रही है, यह बात नहीं है। इसके पीछे बहुत बड़ी दृष्टि है। मंगलाचरण से जीवन का भी मंगल है, अपने उद्देश्य में पूर्णता प्राप्त होती है—यह है इसके पीछे एक भाव। इसके द्वारा जिन शुभ फलों की उपलब्धि होती है, उनका ब्योरा निम्न प्रकार है :

१. विघ्नोपशमन—सूर्योदय होते ही जिस प्रकार तिमिर नष्ट हो जाता है, पथ साफ-साफ दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार मंगलाचरण करते समय जिसको काम्य माना है, उसमें आने वाली बाधाओं का हमें सम्यक् ज्ञान हो जाता है।

२. श्रद्धा—विश्वास का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। मंगलाचरण से इष्ट के प्रति श्रद्धा दृढ़तर होती चली जाती है।

३. आदर—मंगलाचरण से अपने कार्य एवं इष्ट के प्रति आदर-भाव प्रकट होता है।

४. उपयोग—जब कोई व्यक्ति अपने इष्ट देव के असाधारण गुणों की पूजा-स्तुति करता है तब एक दिन उन गुणों का अवतरण उसमें भी हो जाता है।

५. निर्जरा—मंगलाचरण से अशुभ कर्म को नष्ट करने की प्रेरणा मिलती है। ये ऐसे नष्ट होते हैं जैसे मलिन वस्त्र साबुन के प्रयोग से स्वच्छ होता है।

६. अधिगम—यह सम्यक्त्व की उपलब्धि का प्रमुख कारण है।

७. भक्ति—जब मन में अपने आराध्य के प्रति भक्ति-भाव की वृद्धि होती है तब वह अपने श्रद्धेय को अपना स्व अर्पित कर देता है।

८. प्रभावना—जिससे दूसरों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। दूसरों को इस से सद् प्रेरणा मिलती है।

अस्तु, मंगलाचरण द्वारा उक्त फलोपलब्धि होती है। यह देहली-दीपक न्यायवत् आत्म-कल्याण में भी निमित्त बनता है।

ऋण एक परम्परा है

ऋण एक परम्परा है। परम्परा टूट जाए तो वह परम्परा नहीं कहलाती। आज ऋण लिया फिर उसका व्याज। व्याज के बाद दरव्याज। चल पड़ी न ऋण की परम्परा। जीवन की आखिरी साँस खर्च चुकने पर भी इस परम्परा से वह मुक्त नहीं हो सकता। उऋण होने के लिए मूल का छेदन करना जरूरी है। मूल चुक गया तो व्याज भी चुक जायेगा। माता-पिता ने जन्म देकर तुम्हें ऋणी बनाया है—उनकी सेवा द्वारा उऋण हुआ जा सकता है।

धैर्य धर्म

मनुष्य, तुम गहन अन्धकार में विस्मृत वस्तु का अन्वेषण करने के लिए दीपक को धन्यवाद देते हो, उसका सहारा लेते हो, पर उस धैर्य को मत भूलो जो कष्टों में,

[illegible]
[illegible] जीवन का मूलाधार मानो।

विश्राम चतुष्क

एक दिन मेरी यात्रा में मुझे, एक लकड़-हारा मिला। वह अत्यन्त दुर्बल सा था —मैंने देखा कि नगर में प्रवेश करते-करते और मेरे देखते-देखते उसने तीन स्थानों पर लकड़ी के अपने बोझ को रखा और फिर सर पर उठा लिया। अन्त में नगर में प्रवेश कर गया।

वह चला गया, किन्तु उसकी इस क्रिया ने मुझे चिंतन के लिये उत्प्रेरित कर दिया।

मनुष्य के दैनिक कार्य और उसकी व्यस्तताएँ मेरे सामने थीं। मैंने सोचा, यदि मनुष्य अपने व्यस्त कार्य-क्रमों में से कुछ समय निकालना प्रारम्भ कर शास्त्र और धर्म में लगाता है तो यह आध्यात्मिक दृष्टि से आत्म-बल प्राप्त करने का प्रथम विश्राम-स्थल है। धर्म-कार्य के लिए एक कदम भी बढ़ाता है, तो यह उसका प्रथम विश्राम है।

पापाचार से थका मनुष्य यदि मुनिदर्शन और सत्संग करता है, तो यह उसका दूसरा विश्राम-स्थल है।

श्रवण करता है तो सोचता भी है, समझता भी है और समझ आने पर आचरण की ओर प्रेरित होता है। यह उसका तीसरा विश्राम स्थल है।

और, यदि उपदेश पर अमल शुरू कर देता है तो यह उसका चौथा विश्राम स्थल है।

विश्राम यात्री लिए कितना महत्वपूर्ण होता है, यह यात्री स्वयं जानता है। विश्राम कर लेने पर अपने गन्तव्य की ओर वह और भी तेजी से आगे बढ़ता है।

भगवत-भक्त कैसे हों

जिसके कोमल हृदय में प्रेम व स्नेह का वात्सल्य छलकता है, अहिंसा और करुणा का निर्झर बहता है, वही भक्त कहलाने का अधिकारी है।

श्रद्धा-विहीन जीवन, जीवन नहीं

मनुष्य अन्न-पानी के अभाव में जीवित रह सकता है, पर श्रद्धा-विश्वास के अभाव में एक क्षण भी जीवित नहीं रहता। श्रद्धा धर्म के प्रति हो या अधर्म के प्रति, परन्तु श्रद्धा अनिवार्य है।

ध्यान कब सफल होगा

हृदय की पवित्रता के बिना, जीवन को शुद्ध किए बिना ध्यान सफल नहीं हो सकता। जो उच्च जीवन व्यतीत करना चाहता है, उसे हृदय को पवित्र बनाने का प्रयत्न करना ही होगा।

लक्ष्य का संघर्ष

गन्तव्य की ओर जब तक मात्र नजर है तभी तक संघर्ष है। मंजिल पर पहुंचने पर संघर्ष नहीं होता। तब गति के लिए स्थान नहीं रह जाता।

अपने-अपने मतवादों के अच्छे होने की दुहाई क्यों दी जा रही है? जब सब का लक्ष्य ही एक है और लक्ष्य तक पहुंचने का ही यह संघर्ष है। पहुँचना तो सभी को

एक साधु अपने उपदेश में कह रहा था—"बहता हुआ पानी अस्थिर है। जैसे साधु को बरसों का डेरा अस्थिर है। इसी प्रकार जीवन भी अस्थिर है, नश्वर है।

सब यात्री हैं, पर लक्ष्य भिन्न है

एक पर्वतारोही है, उसका लक्ष्य है कि पर्वत की सर्वोच्च चोटी पर पहुँच कर ध्वज को गाड़ दूँ।

एक वैज्ञानिक है, उसका ध्येय है कि किसी ऐसी विलक्षण वस्तु की खोज करूँ कि सारा संसार चमत्कृत हो उठे।

एक साधक है, उसका लक्ष्य है कि जीवन में उत्तरोत्तर आत्मा का विकास करूँ।

तो कहना यह है कि सब यात्री हैं, परन्तु उनकी यात्रा का लक्ष्य भिन्न है।

ध्येय क्या

प्रत्येक प्राणी का ध्येय यह होना चाहिए कि संसार और जीवन अपार कष्टों से पीड़ित, कष्टों से भरा और दुःखमय है। अतएव हेय है, अग्राह्य है। इनसे मुक्ति पाना ही मनुष्य का परम ध्येय होना चाहिए। शाश्वत प्रकाशमय, ज्योतिर्मय सिद्धस्थान की सदा प्रार्थना करते रहो। नरकों के दुःखों-कष्टों का सदा भय हमारे सामने रहे।

१२. ऋषि और मुनि : अतीत का एक सत्य

ऋषि सम्प्रदाय और मुनि सम्प्रदाय में दोनों की दृष्टियों में महान् अन्तर नजर आता है, दोनों में भेद

आकर्षण की [illegible]

[illegible] विद्वान प्रो० [illegible] ने भारत के प्रति अपने मन में [illegible] आकर्षण व्यक्त करते हुए कहा था—

"मैं भारत की पवित्र धरती के दर्शन और स्पर्श करना चाहता हूं, क्योंकि भारत मेरी दृष्टि में विश्व का सर्वोत्कृष्ट देश है—इसलिए कि अदृश्य हाथों वाली सर्वोच्च शक्ति ने वहां अध्यात्म का एक अलौकिक दीप जोड़ा है, जो सहस्राब्दियों के बाद भी अचल और अडिग है।"

संस्कृति की गंगा

संस्कृति का शिखर, संस्कृति के मूल तत्वों पर आधारित होता है। किसी देश या समाज के विभिन्न व्यापारों में या सामाजिक बन्धनों में दानवता का परिहास कर

मानवता की दृष्टि से प्रेम, प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्त्व व आदर्शों की समष्टि को संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति के मूल तत्त्वों की दृष्टि से इसका दूसरा पक्ष भी है। संस्कृति मूलतः अग्रगामिनी तो है ही। विचार-विभिन्नता की नदियों को अपने में समा लेने वाली तथा बहा लेने वाली संस्कृति ही सक्षम और पूर्ण मानवीय संस्कृति है और उसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं।

मन की गागर रीति रह गई

मनुष्य का मन दोष संयुक्त प्रकृति के कारण इतना ढीठ तथा बेअक्ल हो गया है कि सदाशयता की रोशनी की एक किरण का भी स्पर्श कर पाने में वह सदा के लिए असमर्थ हो चुका है।

सन्त और मुनि

सन्त आए, मुनि आए, महर्षि आए—अनंत-अनंत ज्ञान-किरणों की वर्षा हुई, किन्तु अक्ल के बचपने मन ने उसे (मनु को) न सन्त के सत्य से, न मुनि के मौन से और न महर्षि के तप से कभी भेंट होने दी।

सन्तों ने सत्य पाया, मुनियों ने मौन का महत्त्व बताया, महर्षि ने तप की तेजस्विता प्रतिबिम्बित की, परन्तु उसके लिए व्यर्थ गई।

जीवन के अनंत सत्यों के साकार चित्र उस बचपने मन की आँखों के आगे से गुजरे, परन्तु उसके मन की गागर सूनी और रीति की रीती ही रह गई।

भक्त के भेद

इस संसार पर दो प्रकार के भक्त परिलक्षित होते हैं - एक समय देखकर भक्ति करने वाले, दूसरे सदा काल भक्ति करने वाले ।

बाहर स्वांग भक्ति करने वाले, प्रार्थना का रंग तिरंगा द्रव्य उपस्थित कर जनता को विमोहित करने वाले, भीतर से कुछ और ही आचरण करने वाले व बाहर से कुछ और कार्य करने वाले भक्त संतरे जैसे होते हैं ।

खरबूजा बाहर में भिन्न दिखता है । भीतर में एक जैसा होता है । चमड़ी भी भीतर में एक रूप है । उसी प्रकार भक्त भी प्रत्येक परिस्थिति में सदा सर्वदा काल भक्ति करने वाले भक्त खरबूजा व संतरे जैसे होते हैं ।

बड़प्पन

गुणों से उपार्जित बड़प्पन प्राप्त किये बिना कोई बड़ा नहीं हो सकता । अपने अहंकार और चापलूसी के चक्कर में आकर झूठा बड़प्पन प्राप्त करने का प्रयत्न व्यर्थ है । धतूरे का अपर नाम कनक है व स्वर्ण को भी कनक कहते हैं, किन्तु धतूरे के आभूषण नहीं बनाये जा सकते ।

दरिद्रता क्या है ?

धन से हीन व्यक्ति दरिद्रता की कोटि में नहीं आता, प्रत्येक समय असंतोष प्रकट करने वाला ही दरिद्र कहलाता है । हर किसी के सामने असंतोषी व्यक्ति हाथ पसारकर अपनी तुच्छता प्रकट करता है ।

अंगारों की वर्षा

कृतज्ञता और कृतघ्नता दोनों सहोदरा हैं। आलंकारिक शब्दों में कहें तो यों कह सकते हैं कि एक सिक्के के दो पहलू हैं। यह सिक्का और कोई नहीं—पल-पल, क्षण-क्षण अनन्त भावोर्मियों में डूबने और तैरने वाला हमारा मन है।

जब यह मन साधुता की (संयम की) मेढ़ पर खड़ा होता है, गुण-रत्नों की वर्षा करता है, तब व्यक्ति, समाज और संपर्कस्थ समस्त जग-जन धन्यताशाली होता है, प्रसन्न बनता है और जब यही मन उस मेढ़ से हटा कि अवगुण, दुराग्रह, द्वेष और विषमता के अंगारों की अनवरत वर्षा प्रारम्भ कर देता है।

हृदय की बांझ अवनि

हृदय की उर्वरा अवनि निरन्तर अवगुण के दाह से दग्ध होती रहती है, तो एक दिन यह भी आता है जब हम देखते हैं कि उर्वरा पृथ्वी बंजर या बांझ हो चुकी है। अब इसमें सौम्यता, सदाशयता, करुणा और स्नेह के कोमल भावतंतु खोज पाना असंभव है।

और,

जब हम देखते हैं कि सचमुच मानव को मानवता के अदृश्य माध्यम द्वारा बांध लेने वाली स्नेह रज्जु वहां से टूटी ही नहीं है, वह नष्ट भी हो चुकी है।

और हमने यह पाया कि तब मानवता का प्रजनन करने वाली अवनि बंजर हो चुकी है, दूसरे शब्दों में बांझ बन चुकी है।

अहंकार

पानी का फुहारा ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता जाता है, आप देखते हैं कि अगले ही क्षण वह गुरुत्वाकर्षण वश नीचे भी गिरना प्रारम्भ हो जाता है।

मनु यदि तुम पानी के फुहारे अर्थात अहंकार के वेग से ऊपर चढ़ने का प्रयास करोगे तो गिरोगे—पतित होगे। मानव की श्रेणी में अर्थात् सामाजिक बने रहोगे तो तुम्हारा स्वर्गोपम मार्ग प्रशस्त होता जाएगा।

मनुष्य क्यों श्रेष्ठ है ?

दाम का मूल्य नहीं, दान का मूल्य है। दान के पीछे भावों की जो गरिमा है, उसका मूल्य है। दाम तो नष्ट हो जाता है—देने वाले का नाम भी नष्ट हो जाता है। मनुष्य की श्रेष्ठता इसमें है कि वह दान के पीछे निष्काम और पवित्रता का भाव रखता है।

मंगल

दुनिया का हर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार का मंगल मनाता है। मंगल मनाने की परम्परा के पीछे क्या भावना है—इसे वह स्वयं नहीं जानता है। परन्तु, क्योंकि परिवार में यह परम्परा चल रही है, इसी नाते वह भी उस परम्परा का अनुसरण करता है। परन्तु, इसका सही माने में जो अर्थ है; वस्तुतः वह मंगल करने वाला है।

'मं' अर्थात् पाप 'गल' अर्थात् गला दे, वह मंगल। मंगल मनाने के पीछे एक और गहरा भाव छुपा है, जिसे

जानना ही मंगल के सही अर्थ को जानना है और तभी मंगल के नाम पर किया गया कार्य सार्थक है।

'मंगल' की शाब्दिक परिभाषा समझ लेने पर पाठक ने यह जान लिया कि मंगल पाप को विनष्ट करता है, किन्तु भविष्य में उन या उस पाप की पुनः आवृत्ति न हों।

जीवन का संलक्ष्य

आज मानव अपने दैनिक और आध्यात्मिक गुणों को भूलता जा रहा है, स्वर्ग का—सुख का मार्ग छोड़कर बाह्य आकर्षण में लिप्त होता जा रहा है, अतः पद-पद पर पथच्युत होता जा रहा है और जीवन के परम काम्य को बिसार चुका है।

ज्ञानियों का कहना है :

मानव, तू अपनी जीवन-नैया को भंवर से बचा और जीवन का संलक्ष्य प्राप्त कर।

कथा के बीज

क्षण-क्षण नष्ट होने वाले संसार में एक अमर तत्त्व है— वह है लोक-जीवन और लोक-विश्वासों पर आधारित, पल्लवित और जीवित तत्त्व-कथा या वार्ता !

कथाओं और वार्ताओं में जीवन का तत्त्व गुम्फित होता है— वह याद कराने या करने की वस्तु नहीं होती, क्योंकि इनमें निहित रहने वाला सत्य त्रिकालबाधित होता है, कालजयी होता है।

पूजा का आध्यात्मिक पक्ष

आराध्य की पूजा एवं श्रद्धा अर्पित करने के पीछे जो भाव है, उसे समझकर पूजा करने पर या समर्पित होने पर भगवान् को जो सुख अनुभव होता है, उस सुख में और बिना समझे बाह्य प्रसाधनों के माध्यम से आराध्य की जो पूजा की जाती है, उसमें मूलभूत अन्तर है, यह समझ लेना बड़ा आवश्यक है !

पूजा के लिए पुष्प, फल, दीप, धूप की अनिवार्यता स्वीकार्य है, किन्तु पुष्प कामदेव का बाण है। उसे अर्पित करने का अर्थ है भक्त अपने काम-विकारों को भी पुष्प के साथ अर्पित करता है। पुष्प काम-विसर्जन का प्रतीक है।

फल—आम्रादि फलों में माधुर्य होता है। वह अपने आराध्य के समीप अपने माधुर्य को प्रकट करने के साथ-साथ जीवन में और अधिक माधुर्य की कामना करता है।

धूप—धूप प्रज्वलित करने के पीछे उनके मन की परत में यह भाव भी छुपा रहता है कि इस की सुगन्ध की तरह मेरे जीवन में भी सुकृत की सुगन्ध व्याप्त हो जाए।

अलौकिक सृष्टि करता है और वेदना या पीड़ा को अनुभव नहीं होने देता। यह चमत्कार साधारण व्यक्ति के चिंतन और विचार से बहुत ऊपर की वस्तु है।

मुक्ति का सीधा रास्ता

एक बार किसी श्रद्धालु व्यक्ति ने मोक्ष-मार्ग को जानने की भावना से भगवान महावीर से पूछा—भगवन, मोक्ष का मार्ग क्या है?

उत्तर मिला—

१. वय-स्थविरों, दीक्षा-स्थविरों, ज्ञान-स्थविरों आदि गुरु जनों की सेवा करना।
२. कुमार्गगामी अज्ञानी जनों की संगति से दूर रहना।
३. आत्म-हितकर कल्याणकारी सत्शास्त्रों का स्वाध्याय करना।
४. जन-संकुल में परिव्याप्त कोलाहल से दूर रहकर आत्म-चिन्तन करना।

है वह मात्र उसी के लिए ही नहीं, प्राणिमात्र की कल्याण-भावना से, सभी को सुनाने की भावना से कहा जाता है।

यहाँ तक कि उपदेशदाता स्वयं भी उन श्रेष्ठताओं की तुला में अपने को तोले ! तभी उसका उपदेश स्व-पर कल्याणकारी होगा।

सुनो आत्मा !

हे आत्मा, तू कीट-पतंगों की भाँति भोग की आग में झुलस कर अपने शरीर को नष्ट मत कर। शूकर की भाँति विषयों की ओर मत दौड़। सद्गुणों का सौरभ पी कर अलमस्त बन जा। गगन-विहारी गरुड़ की भाँति अनंत ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आकाश में विचरण कर।

सुख की खोज

मानव, तू सुखान्वेषी होकर कहाँ भटक रहा है ? कभी किस में और कभी किस में सुख की खोज करता है, किन्तु सुख का अक्षय स्रोत तो तेरे अन्तर में ही प्रवाहित हो रहा है। मन के गिरि-शिखर से अनेकानेक निर्झर बह रहे हैं, उन्हें चीन्हने का प्रयास तो कर ! तेरा भटकाव और टकराव मिट जाएगा।

शरीर वेदना के पीछे छुपा अनुभूति का सुख

शरीर और वेदना का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। स्थितप्रज्ञ भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। किन्तु जो वस्तुतः भेद-विज्ञान का ज्ञाता है, वह इस पीड़ा-दायक घड़ी में भी भेद-विज्ञान के जादू द्वारा समभाव की

अलौकिक सृष्टि करता है और वेदना या पीड़ा को अनुभव नहीं होने देता। यह चमत्कार साधारण व्यक्ति के चिंतन और विचार से बहुत ऊपर की वस्तु है।

मुक्ति का सीधा रास्ता

एक बार किसी श्रद्धालु व्यक्ति ने मोक्ष-मार्ग को जानने की भावना से भगवान महावीर से पूछा—भगवन, मोक्ष का मार्ग क्या है ?

उत्तर मिला—

१. वय-स्थविरों, दीक्षा-स्थविरों, ज्ञान-स्थविरों आदि गुरु जनों की सेवा करना।
२. कुमार्गगामी अज्ञानी जनों की संगति से दूर रहना।
३. आत्म-हितकर कल्याणकारी सत्शास्त्रों का स्वाध्याय करना।
४. जन-संकुल में परिव्याप्त कोलाहल से दूर रहकर आत्म-चिन्तन करना।

श्रमण

परिधान के परकोटे में श्रमणत्व को बंदी नहीं बनाया जा सकता। श्रमण में इन निम्न तीन गुणों का होना परम आवश्यक है—

१. श्रद्धा-बल मजबूत हो अर्थात् अपने आराध्य के प्रति अडिग और समर्पित श्रद्धा हो।

२. क्रोधादि कषायों की मन्दता हो।

३. गुरुजनों के प्रति नम्रता हो। अहं भाव का परित्यागी, मंदकषायी, विनयी हो।

विलम्ब हो रहा है।

"ठहरो, जरा इस नृत्य को देखने दो।" एक युवा भिक्षु बोला।

भिक्षु के गुरु ने कहा : "विलम्ब हो जायगा।"

"हो जाय, किन्तु मैं नृत्य जरूर देखना चाहता हूं।"

"ठीक है, तुम्हारे मन को नृत्यांगना की थिरकन भा गई है, किन्तु चलना बन्द मत करो। चलते रहो, आगे इस से भी सुन्दर नृत्य देखने को मिलेगा।"

युवा भिक्षु चल दिया।

गुरु ने कहा : "देखो, यह आ रहा है। यह जा रहा है। पुष्प खिल रहे हैं। सूर्य उदय हो रहा है। हवा बह रही है। रोशनी थी, अब अन्धेरा हो रहा है।

"तुम नृत्य की बात कर रहे थे न? वर्तमान अतीत बन रहा है। साँसें आ रही हैं, साँसें जा रही हैं। आयु नष्ट हो रही है। मनुष्य नष्ट हो रहा है।

"विलम्ब हो रहा है। तुम कहते हो, नृत्य देख लेने दो। और भी विलम्ब हो जायगा। तुम स्वयं नष्ट हो रहे हो। समय कहाँ है कि ठहर कर नृत्य देख लिया जाय। नृत्य तो प्रति क्षण हो रहा है। उसे [illegible] देखने

का समय नहीं है। समग्र स्वर्ग नष्ट होता जा रहा है—कण-कण क्षण क्षण। दुःख सुख में बदल रहा है, और सुख दुःख में।

"देखने वाला स्वर्ग नष्ट होता जा रहा हो, फिर ठहर कर नृत्य देखने का समय कहाँ। चलो, ठहरो मत। विलम्ब हो रहा है।"

पूजा अधूरी

उदर हमारा भाग्य-देवता है। उदर ही हमारा पुरुषार्थ का आदि देव है। इस में सारा संसार समाया हुआ है। इस की थाह पाना चाहते हो ? बड़ी भूल कर रहे हो। पहले पेट की पूजा तब अन्य देव की मनौती हो सकती है।

ज्ञानी ने ज्ञान-नेत्र खोले और एक रहस्य-सूत्र कह दिया : विवेक का दीपक जला लो। देवता की पूजा बिना दीपक जलाये करना चाहते हो, तो तुम्हारी पूजा अधूरी रह जायगी।

पहचान का दुःख

हजारों वर्षों से सन्तों और ऋषि-मुनियों ने मनुष्य के दिमाग को खराब किया है—उसे पीढ़ी दर पीढ़ी से यह जहर का इंजेक्शन दिया जा रहा है कि 'क्रोध, अभिमान, लोभ और माया—ये नरक के द्वार हैं।"

इस चिंतन से हम दूसरे और सही प्रकार की बात करते हैं—"क्रोध से पहचान कीजिए। मान को जानिए। अभिमान को समझिए और माया (कपट) को अच्छी तरह चीन्ह लीजिए—ये खुद आप से दूर हो जाएँगे।

इसका परिचय करना जरूरी है। अपरिचित को अपना समझा जाता ही नहीं, तो उसमें उत्पन्न होने वाला प्रश्न ही खड़ा किया जाता है।

क्रोध बुरा है यह मानने पर सर्वत्र व्यक्ति से दुश्मनी पैदा होगी क्योंकि उसमें क्रोध है। यही वजह है कि उसके सही स्वरूप से हम परिचित ही नहीं हो पाते। हमें व्यक्ति और दुर्भावों को अलग-अलग उघाड़ कर देखना है। जब तक इसे न देखा समझा, जाएगा कुछ भी होने वाला नहीं है। शत्रुता उसमें बनी रहेगी।

आग लगे भवन से निकल जाने के लिए द्वार से परिचय नहीं है इसीलिए दीवार से सर टकराता है और उसी आग लगे मकान में भटक-भटक कर मनुष्य अपना सर फोड़ रहा है। जब द्वार दीख जाएगा तो किसी से पूछने, कहने या सलाह करने की जरूरत नहीं रह जाएगी। ऋषि-मुनियों व संतों से सलाह-मशविरा भी नहीं करना होगा—व्यक्ति खुद-ब-खुद द्वार से बाहर निकल जाएगा।

वाणी की ताकत

महापुरुषों और सन्तों की वाणी हृदय से निकलती है, अतः उसका असर जल्दी होता है; किन्तु राजनीतिज्ञों की वाणी कण्ठ से निकलती है, अतः असर से एकदम शून्य होती है। क्योंकि राजनीतिज्ञों ने माधुर्य को दूध में से मक्खी की तरह अलग कर दिया है।

पाप से कैसे बचा जाय

पाप से बचा कैसे जाय ?

सवाल कुछ उलझनपूर्ण हो न हो, परन्तु प्रश्न में व्यथा

अंग माना है, किन्तु हम इससे सहमत नहीं। प्रीति जगेगी अन्दर से। अन्दर से प्रीत जगेगी तो प्रीत की रीत वह खुद पैदा कर लेगा। उसे भय की आवश्यकता नहीं होगी।

ममत्व की अमिट रेखा

राग एक भाव है—ममत्व एक रेखा है। यह राग सांसारिक वस्तुओं पर हो या व्यक्ति के प्रति राग हो, है दोनों ही राग। राग की एक श्रेणी और है जिसे प्रशस्त राग कहा जाता है। किन्तु, विचारकों का कहना है कि भोगमूलक राग और त्यागमूलक राग—इन्हें क्रमशः अप्रशस्त राग और प्रशस्त राग कहा जाता है। दोनों को राग स्वीकार करके यह भी कहा कि बेड़ी हैं ये दोनों—एक सोने की बेड़ी, दूसरी लोहे की।

प्रशस्त और अप्रशस्त राग को हम एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करते हैं :

एक बौद्ध भिक्षुणी थी। उसे अपने आराध्य भगवान बुद्ध से बड़ा राग था। बुद्ध से राग हो तो हर्ज जैसी बात क्या थी, किन्तु उसके पास एक सुन्दर मूर्ति थी। वह बुद्ध की थी। वह उसे इतनी प्रिय थी कि हर समय वह उस मूर्ति को अपने साथ रखती। उसके सामने यदि कोई राम, कृष्ण, ईसा या अन्य किसी भी देव पुरुष का नाम लेता तो उसे बड़ी भारी पीड़ा होती थी।

चीन स्थित सहस्रबुद्धों के मंदिर में वह एक दिन पहुंची। वहाँ बुद्ध की विविध मुद्राओं वाली विशालकाय मूर्तियाँ स्थापित थीं। भक्तों की भीड़ थी। सब लोगों ने

जिधर मुंह किया, उधर ही भगवान की भव्य मूर्तियों के दर्शन करते ।

इधर भिक्षुणी को बड़ी भारी पीड़ा होने लगी। वह सोचती कि बुद्ध तो मेरे पास जो मूर्ति है, उसी में हैं। अपने आराध्य की पूजा मैं यहीं करूंगी। पूजा करने लगी। सुगंधित पदार्थों का धुआं दूसरी मूर्तियों की ओर जाने लगा, तो इस पर भी उसे दुःख अनुभव हुआ। उसने बांस की नली ली और धूपदान से उठने वाले धुएं पर रख कर दूसरा मुंह सुन्दर प्रतिमा की नाक पर लगा दिया। इससे धुआं तो इधर-उधर नहीं गया, किन्तु उसकी सुन्दर मूर्ति काली पड़ गई। लोगों ने उसे प्रताड़ना दी।

बौद्ध भिक्षुणी के इस उदाहरण से स्पष्ट है कि आज लोगों में धन-ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति तो है ही, घर, मकान, पुत्र, मित्र, परिवार इन में मोह होने के बावजूद वह आज भगवान को भी अपना बनाने की चेष्टा कर रहा है। वह भगवान में भी केवल यह चाहता है कि मात्र मेरा अधिकार उस पर रहे। मोह की, राग की कैसी विडम्बना है। राग का अंश जहां-जहां है, वहां-वहां संसार है और वह दुःख का अथाह सागर है।

दुनिया एक ग्रंथ है

क्षितिज के उस पार का संसार और इस पार का संसार, इसमें कोई भेद है ?

नहीं।

इस को हम यों समझें :

संसार एक विशालकाय ग्रंथ है। एक स्थान पर रहने वाला यानी क्षितिज के इस पार रहने वाला उसे एक ओर से ही देख-पढ़-समझ पाता है। पर्यटक उसका सम्पूर्ण अवगाहन कर लेता है, क्योंकि वह संगरहित अप्रतिबद्ध होता है।

आकाश के मेघों को आपने देखा है कि वे बरसते हैं, परन्तु वे पानी तो इस पृथिवी से ही प्राप्त करते हैं। महापुरुष भी इसी संसार से लेते हैं और इसी को उसमें ताजगी लाने के लिए पात्र की योग्यता-अयोग्यता को देख कर अर्पित कर देते हैं।

मेघों के बरसने पर पृथ्वी का पोर-पोर हरा-भरा हो उठता है।

महापुरुषों द्वारा लौटाई गई विरासत से मानव-मात्र सुखी और समृद्ध हो जाता है—यदि उसमें पात्रता है। उनके कहे को हृदय की अवनी में धारण कर लेता है तो उसका जीवन निश्चय ही समृद्ध हो जाता है।

पांच गर्वोन्नताएँ

एक दिन की यायावरी में मैंने गर्वोन्नताओं का वार्तालाप सुना।

उपेक्षित कूड़े के ढेर में पांच गुठलियों का संवाद था :

पहली—"मेरे फल को घास में पकाया और जब वह रस से लबरेज हो गया तो पूरे परिवार ने, नन्हें-मुन्नों और अतिथियों सहित, सब ने उसका उपभोग किया—मैंने देखा परिवार का वह सुख और वातावरण। मैं निहाल हो गई। मेरा जन्म महिमा-मंडित हो गया।"

दूसरी—"अरे तेरा जन्म सफल हो गया, मेरी सुन। एक ईश्वरभक्त ने मुझे देव-चरणों में अर्पित कर दिया। मनुष्य-दर-मनुष्य, थोड़ा-थोड़ा प्रसाद बाँटा गया। उन की देव-चरणों में अर्पित श्रद्धा को मैंने देखा और सौभाग्य का सुख पाया।"

तीसरी—'तुम तो दोनों सौभाग्यशालिनी हो, परन्तु मेरी भी सुनो। खिल बोलते पाँखियों ने अपनी चोंच गड़ा-गड़ा कर मेरा फल उपभोग किया। वे प्रसन्न हुए और उनकी प्रसन्नता देख-देख मेरा मन आनंद से भर गया।"

चौथी गर्वोन्नत होकर कहने लगी—"मेरा सौभाग्य देखो। अनेकों निशानेबाजों ने मुझ पर पत्थर फेंक कर मेरे साथ छेड़ करनी चाही—कुछ लोगों ने गुलेल का निशाना भी साधा, पर सब बेकार। मैं अपने गदराये यौवन के मद में उमंगती रही और खुशियों में भर गई।"

अपने-अपने यश का यह विकथन हो रहा था, तभी एक आह उभरी। सिसकियों ने सारे वातावरण में स्तब्धता पैदा कर दी।

पाँचवीं ने कहा—"मैं कैसी मंद-भाग्या हूँ। आम के वृक्ष ने मेरे यौवन की ऐसी पहरेदारी की कि मैं न तो किसी की आँख चढ़ी और न आँख में आयी। पक्षियों का कलरव, मनुष्यों के संलाप सब कुछ मैं सुनती रही, परन्तु किसी की दृष्टि मुझ तक न पहुंच पायी। परिणाम यह हुआ कि मेरी सारी जिंदगी बर्बाद हो गई। वृक्ष की

बांधता दिखाई देता है। साबित करने का प्रयत्न करता है कि ज्ञानी हूं तो बस मैं।

"क्या आप बताएंगे कि सच्चा ज्ञानी कौन हो सकता है?"

मैंने कहा : "ज्ञानी तो कभी कहता नहीं कि मैं ज्ञान का घटक भी हूं। वह तो शांत भाव से उत्साह, लगन, सद्भाव और इससे भी बढ़ कर निष्काम भाव से कर्म करता चला जाता है। अपना मंगल बाद में, दूसरों का अभ्युदय पहले—यह उसके जीवन का आदि, मध्य और अन्त ध्येय होता है।

साधना का समय

एक जिज्ञासु का प्रश्न था : "मनुष्य को कब और किन परिस्थितियों में साधना पथ पर अग्रसर होना चाहिए या उचित है?"

उत्तर में मैंने कहा : "अपनी शक्ति को नापो, उत्साह को परखो और श्रद्धा को तोलो। फिर जब चाहो, साधना के लिए अचलासन लगा लो।"

नियंता बनिए

"किस तरह के शासन को परिपूर्ण या सुशासन कहा जा सकता है?"

"शासन तो प्रेम का, बाकी सब कुशासन हैं। शासित के हृदय को न जीता, अनुचर के हृदय पर आपने नियंत्रण नहीं स्थापित किया, फिर भी आप कहते हैं कि मैं अपने परिवार का नियंता हूं। मैं समाज या देश का नियंता हूं, तो मुझे कहने दो कि आप एकदम गलत बोल

रहे हैं। ठहर जाइए, अगली बात कहने दीजिए कि आप अपने पर भी नियंता नहीं हैं-पहले नियंता स्वयं के बनिए।

संघर्ष

मैं देख रहा हूं। आप भी देख रहे हैं—जलचर, नभचारी, भूगामी सब में एक आत्मा का स्पंदन है। सब सुख-शांति के लिए दौड़ रहे हैं। पता है कि कर्मों का अंत करने पर ही मुक्ति मिलेगी, फिर अलग-अलग पथों में भटकने को ही सत्य मान कर संघर्ष क्यों हो रहा है?

स्थापित मृत्यु

धर्माचार्य जब मानवधर्म के स्थान पर स्वार्थ की ओट में धर्म की व्याख्या करने लगता है तो निश्चय ही वह अपनी स्थापित मृत्यु को आहूत करता है, क्योंकि वह उस समय सांस्कृतिक परम्पराओं तथा मानवीय स्थापनाओं की हत्या करने से भी नहीं चूकता है।

दुष्ट और महापुरुष

मैंने जब यह पढ़ा कि दुष्टों को संहारने के लिए महापुरुष अवनि पर अवतरित होते हैं और शस्त्र द्वारा दुष्टों का संहार करते हैं, तब मेरी प्रतिक्रिया यों व्यक्त हुई:

शस्त्रधारी अज्ञानी है और वह शस्त्र द्वारा दुष्ट का संहार सकता है, परन्तु महापुरुष दुष्टों की दुष्ट प्रवृत्तियों का संहार शस्त्र से नहीं, अपने विमल आचरण और हृदय-परिवर्तन द्वारा ही उसकी जीवन-दिशा को स्थायी रूप से मोड़ देते हैं। आचरण की निर्मलता ही उनका अमोघ

शस्त्र है—वह निर्मलता किसी भी प्रयोग द्वारा पैदा हो। धातु का शस्त्र मारक हो सकता है, परन्तु वह तारक कभी नहीं हो सकता। महापुरुष तारक होते हैं, मारक नहीं।

जनमंगल

प्रश्नकर्ता ने कहा : "मनुष्य सशक्त बने, पहलवानी करे, स्वस्थ बने, तो इसके पीछे धार्मिक चिंतन क्या कहता है ?"

"धार्मिक चिन्तन स्वस्थ बनने, सशक्त बनने से कभी नहीं रोकता-टोकता। वह कहता है कि ताकतवर तो अवश्य बनो, क्योंकि बलवान शरीर में ही बलवान आत्मा का निवास होता है, परन्तु बलवान शरीर का उपयोग मारक या संहारक कार्यों में न हो। शरीर बलवान है तो अच्छी बात है, किन्तु इसका इस्तेमाल करते समय यह जरूर देख-परख लेना है कि उस कार्य द्वारा जन-मंगल कितना सध रहा है।"

मुक्त सत्य

दर्शन की स्वस्थ दृष्टि कभी तुम्हें मान्यताओं की चारदीवारी में कैद नहीं करती—न तुम्हें और न तुम्हारे चिन्तन को। उसकी असीम दृष्टि में सत्य शास्त्रों की भाषा में या विधि-निषेधों में न बँधा है, न बँधेगा। वह शुद्ध मुक्ताचारी है।

और सदैव सम्प्रदाय की लौह दीवारों को तोड़ता चला है। असीम को सीमा में बाँध कर बहुतों ने सम्प्रदायें खड़ी करने का प्रयास किया है, किन्तु सत्य हमेशा सम्प्र-

बांध को तोड़ कर बढ़ा है। यदि ऐसा होता तो मर्यादाओं और व्यवस्थाओं की आज इतनी दीवारें खड़ी हो जातीं कि मनुष्य का सांस लेना भी दूभर हो जाता।

अपना सुधार

मैं अपने चारों ओर देख रहा हूँ और समझ रहा हूँ। देखता हूँ और अनुभव करता हूँ, इसलिए कहना चाहता हूँ— मेरा लोग अपने को श्रेष्ठ और ऊंचा साबित करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि इन प्रयत्नों में यह अदना इंसान अच्छा है, जो अपना सुधार करना चाहता है।

अन्तर्दीप जला रे!

अंधकार से घिरे कमरे में दीपक न जोड़ा जाय, तो लगता है कि अंधकार हमें समूचा ही गटक जायगा। किन्तु अन्तरात्मा में गहनतम अंधकार है, उस ओर कभी झांकते तक नहीं। एक नहीं, जन्म के जन्म बीत जाते हैं, मनुष्य का चिंतन इस ओर नहीं मुड़ता। जब कभी मुड़ता है, तो ऐसे कि सब कुछ भूल कर अन्तर में दीपक जोड़ देता है। इस तथ्य को एक कथानक के द्वारा यों समझें:

फ्रांस का एक बूढ़ा, जर्जर-देह किसान। गोधूलि बीत चली। १२ वर्षीय पौत्र खेलता हुआ आया। कहा: "बाबा! क्या आज आप दीया नहीं जलायेंगे? अन्धेरा तो काफी घिर आया है।"

पौत्र की बात सुन, किसान का चिरकाल से सोया मनवा जाग गया। अन्तर्मन में अंगड़ाई ली। उसने कहा: "तुम ठीक कह रहे हो। अन्धेरा तो काफी घिर आया, पर

दीया नहीं जलाया। "बूढ़े ने अपना अतीत देखा। अन्धेरा-अन्धेरा ! घना और एकान्त अन्धेरा !" इसी अन्धेरे को मेटने के लिये ही तो बेटे, तुमने कहा है कि दीया जला लो। बाबा, अन्धेरा काफी घिर आया है।"

पौत्र ने बाबा की बात सुनी, पर समझ न सका। बाबा आज किस अधेरे की बात कर रहे हैं। पौत्र ने देखा कि बाबा न जाने किस अज्ञात लोक में खो गये। कुटिया में बाबा की जगह पौत्र ने दीपक जोड़ा।

बाबा का अन्तरमन जाग गया। उसने अन्तर को आलोकित कर लिया। विचार की एक चिनगारी ने उस बूढ़े किसान की जीवन-दिशा बदल दी।

भारत का ऋषि भी इसी दीये को जलाने की बात कहता है। अतीत को देखो, भविष्य को निहारो और वर्तमान में जागो—अन्तर का दीप जलाओ।

बड़ा कौन !

प्रश्न है बड़ा कौन ? शरीर से या धन से बड़ा हो, उसी को बड़ा कहा जा सकता है या जो मन से बड़ा हो उसे बड़ा कहा जा सकता है ?

प्रश्न तो मौके का है। घन से, पद से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा होता है वह, जिसका हृदय उदार हो, भावना उदात्त हो, साथ ही अनुदार भावना से गुरेज करने वाला हो। उसी को हम बड़ा कहते हैं।

कोढ़ की पीड़ा

मैंने देखा और अनुभव किया कि एक व्यक्ति के

शरीर पर जहरीला फोड़ा है। वेदना की तीव्रता से वह कराहता है। करुणा से हृदय भर जाता है, जब उसे देखा जाय तो न उसे दिन को चैन है, न रात को नींद। परंतु जब फोड़े से सड़ांध निकाल दी जाती है तब वह सुख की नींद सोता है।

मैं सोच रहा हूं कि जब तक मानव-हृदय में कुश्रद्धा, कुविचार, अधम आचरण का फोड़ा है, तब तक उसे सुख-चैन कहाँ नसीब हो सकता है।

सद्विचार, सम्यक् श्रद्धा के पवित्र झरने उसके हृदय में प्रवाहित न होंगे, तब तक मानव को शांति कैसे मिल सकती है। बड़ी साफ बात है कि कुविचारों में अशांति है, उद्विग्नता है; सुविचारों से शांति, सुख और अमन है।

सब जग बौराना

मैंने देखा कि एक बालक शीशे की परछाईं जमीन पर गिरा रहा है और दूसरा बालक उस परछाईं को या प्रकाश को बटोरना चाहता है-पकड़ कर अपनी मुट्ठी में बाँध लेना चाहता है।

मैं दूसरी बात सोचता हू। संसार इस बालक की तरह ही अप्राप्त को प्राप्त करना चाहता है। सुख को पकड़ कर मुट्ठी में बाँध लेना चाहता है। इसके लिए वह बालक की तरह ही भाग रहा है, निरन्तर दौड़ रहा है। सुख को पाने के पीछे खाना भी बिसार देता है। दिन और रात का भेद भी भूल चुका है, परन्तु बालक की तरह उसे पता नहीं कि सुख और चैन उसी के मन में है।

सन्त के शब्दों में— सब जग बौराना।

एक अनुभूति

यौवन के प्रथम चरण कितने कोमल होते हैं, जीव
के प्रथम स्वप्न कितने मधुर होते हैं।

किन्तु कुछ काल बाद ही ध्वंस आता है।

ओह, प्यास पर केवल मरुस्थल की धूल क्यों मि
जाती है?

क्या जीवन इसीलिए चमकना शुरू करता है कि
अंतिम छोर पर यह कालिमा से पुत जाय?

ओह, यह कैसी दुःखान्त कथा है, यह कैसा विपरी
सपना है? मनुष्य भाग्य का कैसा क्षुद्र आखेट है? ए
पल—एक क्षण जैसे सुख सीमित हैं, शेष जैसे हाहाका
का सागर लहरा रहा हो।

आत्म-हत्या से ऊपर

आत्म-हत्या करने से भी कोई अच्छा उपाय है?
है।

लालसाओं की वलि, नहीं, अपनी पूर्ण वलि कर
दूसरों के दुःख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने
का अभ्यास।

आत्म-हत्या अपने-आप को मिटाने की इच्छा नहीं,
एक अहंकार की प्रतिष्ठा है। इससे अधिक आत्म-विस्मृति
तो जग की सेवा में है।

ऐसी आत्म-हत्या यदि कोई सचमुच करना चाहे, तो
उसकी अमरता सिद्ध है।

जब हम किसी अनचाहे, अनजाने व्यक्ति को नहीं चाहते हैं, उसकी उपस्थिति आपको खलती है, तो सीधी सी बात है कि उसे घर से निकाल कर दरवाजा बन्द कर देते हैं।

किन्तु बड़ा विस्मय है कि जब हमारे हृदय में क्रोध का प्रवेश हो जाता है, तो हम नम्रता को, क्षमा को दरवाजे से बाहर निकाल कर पटकनी लगाते हैं।

कर्तव्य

यह कार्य मैं करूँगा, इसमें मुझे सफलता मिलेगी अथवा नहीं, इस अनिश्चित के विचार-जाल में ग्रसित होकर कर्तव्य-पथ को मत छोड़ बैठो, बल्कि निर्भयतापूर्वक आगे ही आगे बढ़ते जाओ, सफलता निश्चित रूप से तुम्हारे चरण पखारेगी।

यदि इस तथ्य को कविता की भाषा में कहूँ, तो यों कह सकते हैं :

कदम चूम लेती है खुद आके मंजिल,
मुसाफिर अगर आप हिम्मत न हारे।

समय

जो मानव समय के महत्व को नहीं जानता, न कोई कार्य समय पर करता है, वह किसी और को क्या खुद को भी नहीं पहचान सकता। समय की पहचान जीवन की पहचान है।

भिक्षुक का उत्तर

भिक्षुक,

तुम तो अभी पूर्ण भी नहीं हो पाये, फिर तुम्हारी कमर क्यों झुक गयी ? इस ठंडी रात में जब लोग तकिये-लिहाफों में आराम कर रहे हैं, तुम यहाँ, इस तार के खंभे के नीचे महज एक टाट के टुकड़े पर क्यों पड़े हो ?

तुम्हारी आँखों में यह कौन-सी कहानी उगी हुई है ? क्या तुम इस धरती के नहीं हो ? तुम्हारी आत्मा में यह क्या है—यह हाहाकार है, अंधकार है, आलोक है या कोई जड़ता का बीजमंत्र ?

बन्धुवर,

मेरी कमर झुक गयी= खड़ा रहने का सहारा नहीं

मिला। मेरी आँखें उन्हें नहीं देख पातीं, जो इस समय कहीं आराम से पड़े होंगे—मैं उसे अवश्य देख रहा हूं, जो ओस में आंसुओं के साथ सो गये हैं—जाग रहे हैं या जो सोने वाले हैं।

और सुनो,

मैं इस दुनिया के लिए, इस धरती के लिए अपनी मौन पीड़ा का अर्घ्य अर्पित कर यही सोच रहा हूं कि यह रात और ठंडी हो, दिन और उजला हो और मेरी आंखों में अचल बने काल के पंख भी खुलें।

तुमने यह सब पूछकर मुझ पर कितना आभार किया है।

करुणा की देवी

तुम्हारे पास अपना असुन्दर हृदय खोलकर रख दूं? तुम्हारे पास अपनी अंधकार कैसे बिछा दूं? तुम्हारे पास अपनी दरिद्रता किस प्रकार अर्पित करूं।

ओ करुणा की देवी, संगीत की अप्सरा और स्वप्न की देवी तुम्हारे आंसुओं की माला मेरे हृदय पर विराजमान है, तुम्हारी शांति भरी मुस्कान मेरे अंधकार में विद्यमान है और तुम्हारे स्नेह का विलास मेरी अकिंचनता में संचित हो रहा है।

मैत्री का आदर्श

मैत्री का आदर्श केवल मानव-मात्र में मित्रता स्थापित करने तक ही सीमित नहीं है। भारत के मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने प्राणी-मात्र को मित्र की आंखों से देखने की प्रेरणा दी है।

भारत के ऋषि-मुनियों ने यह सब कुछ इसलिए अनुभव कर कहा कि भारत की धरती पर जाया-जन्मा मनुष्य क्षुद्र [illegible] में कैद होकर मनुष्यों तक ही मैत्री का विस्तार कर अटक न जाए। उसकी दृष्टि पारगामी होनी चाहिए।

विचारों की क्षुद्रता

पशुओं में संगठन का पाठ पढ़ाने कौन जाता है? किसी शिक्षा-शास्त्री ने पशुओं में संगठन के विस्तार के लिए, प्रसार-प्रचार के लिए आज तक विश्वविद्यालय स्तर पर न सही, कोई बेसिक स्कूल भी खोला है? स्पष्ट है कि नहीं।

आपने अनेक वार अनुभव किया होगा कि पशुओं पर संकट आता है या यों कहना चाहिए कि सवल और हिंस्र पशु द्वारा सात्त्विक और अहिंसक प्रकृति के प्राणियों पर आक्रमण होता है, तो वे सामूहिक रूप से उसका प्रतिकार करते हैं और अपने समूह के सभी प्राणियों—पशुओं—की रक्षा करते हैं!

महद आश्चर्य है कि मानव स्वार्थ में इतना आवद्ध हो चुका है कि आज वह अपने पड़ोसी तक के सुख-दुःख में साझीदार नहीं होना चाहता। वह हर संभव प्रयत्नों द्वारा उससे दूर ही रहना चाहता है।

प्रेरणा की राधा

मानव स्वभाव विजय का आकांक्षी है। विजय प्राप्त करने में विघ्न-वाधाएँ उपस्थित होती हैं। वहुत से ही

नहीं, अधिकांश व्यक्ति विजय-पथ में आने वाली बाधाओं से घबरा कर अपना पथ ही छोड़ बैठते हैं। किन्तु जो दृढ़-निश्चयी और निरन्तर लगन की आग जगाये रहते हैं, वे विजय पथ की बाधाओं से विचलित नहीं होते, अपितु मार्ग में ज्यों-ज्यों बाधाएं उत्पन्न होती हैं त्यों-त्यों और अधिक शक्ति से दुर्गम पथ पर अग्रसर होते हैं। वे बाधा को प्रगति की बाधा मानते हैं।

देवों की दासता छोड़ो

मानव-श्रेष्ठता के गीत भारत के सभी धर्मों ने गाये हैं। जैन धर्म के तीर्थंकरों ने तो मनुष्य को 'सर्वश्रेष्ठ देवानां प्रिय' मानव कह कर सम्बोधित किया है। इसी प्रकार इतर धर्मों ने भी मनुष्य की श्रेष्ठता को एक स्वर से स्वीकार किया है।

मनुष्य समस्त प्राणवान प्राणियों से श्रेष्ठ है—सभी धर्मों के नियंता और प्रतिनिधियों ने यह तथ्य इसीलिए बार-बार दुहराया है कि मानव दीन-हीन बनकर देवी-देवताओं की अधीनता स्वीकार न कर ले।

राष्ट्रों का सुख

विश्व के सभी छोटे-बड़े देश और राष्ट्र सुख-शांति और अमन चाहते हैं, किन्तु इस चाह में एक मूलभूत कमी है। विभिन्न शासन-पद्धति वाले देश विभिन्न रचनात्मक कार्य-पद्धति को स्वीकार करके अपने पड़ोसी और दूरस्थ देशों के प्रति प्रथम सहिष्णु बनें और मैत्री एवं सौहार्द्र का वातावरण उत्पन्न करें, सभी के अभ्युदय

और निन्दा ?

साधारण भाषा में कहें तो समाज भी पापी को, पापकर्मा को भी [illegible] का तिरस्कार करता है परन्तु भगवान् महावीर एक अनोखी बात कहते हैं। वे कहते हैं कि पापी से घृणा मत करो, उसके पाप से घृणा करो, उसके पाप को नष्ट करो। दोषी उसके अन्दर रहा हुआ पशुत्व है। मनुष्य पशुत्व तज दे तो वह भोला-भाला संवेदनशील मानव है। अतः अभिप्राय यह हुआ कि मानव दोषी नहीं, उसका पाप दोषी है, उसका कृत्य त्याज्य और निंदनीय है।

महावीर ने इस तथ्य को आज से २५०० सौ वर्ष पूर्व कहा था : "मानव, तू पापी से घृणा मत कर, पाप से घृणा कर।" पापी से घृणा करने का अर्थ यह है कि वह कुकर्म करने वाला समाज के योग्य नहीं है और उसके अच्छे बनने का अधिकार आप छीनना चाहते हैं।

भक्ति की सफलता

भगवान की भक्ति करनी हो तो चार बातें जरूर सीखनी होगी :

१—तृण-सा भारहीन हलका बनना होगा, पत्थर-सा कठोर न बनकर रुई-सा कोमल बनना होगा।

२—पर्वत के समान दम्भी न बनकर वृक्ष के समान नम्र बनना होगा।

३—पेट्रोल-सा विषमय गरल न बनकर जल सा अमृतमय तरल बनना होगा।

४—मन में ममता का भार न हो, कठोरता न हो, अहंकार व आग्रह न हो, तभी भक्त को सफलता मिल सकती है।

नाम स्मरण

जिस प्रकार क्षुधातुर व्यक्ति को अन्न मिलने पर, प्यास से व्याकुल को पानी मिलने पर, बच्चे को माँ का स्तन मिलने पर, भँवरे को मकरन्द-पराग मिलने पर आनन्दानुभूति होती है, ठीक उसी प्रकार भक्त को भगवान का नाम स्मरण करने पर आनन्दानुभूति होती है।

तप व इच्छा

जहाँ माया का निवास है, वहाँ इच्छा का निवास है। माया का सम्बन्ध इच्छा से है, क्योंकि इच्छा-मुक्ति व शरीर-मुक्ति दोनों में अन्तर है। यहाँ खरबूजे पर चाकू या चाकू पर खरबूजे का न्याय समझना होगा।
...छा है, वहाँ तप का क्या महत्त्व है? इच्छाएँ कम

[illegible]

स्वर्ग भी नरक भी

मानव के पास स्वर्ग भी है, नरक भी है। मानव [illegible] करे। शुभ [illegible] समान है। [illegible] समान है।

आशा

मानव क्या है ? आशा की डोर पर नृत्य कर रही कठपुतली ! कठपुतली मानव से श्रेष्ठ है, क्योंकि वहाँ तो धागा टूटने की सम्भावना रहती है, किन्तु आशा-तृष्णा रूपी भेड़िया तो मानव की हड्डियों तक को नहीं छोड़ता।

गुणों की खोज

गुणों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे देव-दुर्लभ हैं, परन्तु यह कथन शाब्दिक दृष्टि से ठीक नहीं लगता। गुण तो मनुष्य के आस-पास ही परिभ्रमण करते रहते हैं, किन्तु कठिनाई यह है कि मनुष्य उन्हें पकड़ नहीं पाता। उसका स्वभाव है कि वह दूरस्थ के प्रति आकर्षित

होता रहता है । परिणाम-स्वरूप वह इस दूरस्थ के आकर्षण के कारण एक दिन खाली हाथ रह जाता है ।

लक्ष्मीपति बन

मानव, तू लक्ष्मी का दास मत बन । दासता में तुझे कुछ नहीं मिलेगा । दासता तुझे जीवन पर्यन्त चैन से नहीं जीने देगी । तू लक्ष्मी का स्वामी है । लक्ष्मी तेरी चेरी है । उसे अनुचर या अनुगामिनी बनाकर देख, लक्ष्मीपति बन । तुझे ज्ञात होगा कि लक्ष्मी के पीछे भागने में कितना दुःख है और लक्ष्मीपति बनने में कितना सुख है—यह तू स्वयं ही अनुभव करेगा ।

खुशामद

मानव जो कुछ भी बोलता है, मद के अन्दर बोलता है । मद के अनेक भेद हैं । धन-सम्पन्न व्यक्ति व राजा को कौन चुप कर सकता है ? मूर्ख की जिह्वा पर कोई भी अंकुश नहीं लगा सकता । किन्तु, खुशामद इतनी बुलन्द आवाज से बोलती है कि उसकी प्रतिध्वनि के अलावा कुछ भी सुनाई नहीं देता ।

चापलूसी

चापलूस व्यक्ति जोर से बोलता है । उसकी वाक्‌शक्ति यदि आधी रह जाती, तो दुनिया में सज्जनों की संख्या अधिक होती; क्योंकि जहां चापलूसी आती है वहां से सज्जनता पलायन कर जाती है । चूंकि अपमान से पलायन करना अच्छा है ।

चापलूसी अपनी हो या अन्यों की हो, किसी को भी

निष्कपटता ये मन के सौन्दर्य हैं, जो वास्तविक सत्य तथ्य से परिपूर्ण हैं।

जीवन की समतल भूमि—सात्त्विकता

जो मानव अपने को महापुरुषों की श्रेणी में रखना चाहता है, दीर्घायु बनना चाहता है, प्राणीमात्र की भलाई के लिए कुछ कर दिखाने की भावना रखता है, उसे प्रथम स्वयं अपने में सात्त्विकता लानी होगी।

विचार, आचार जीवन की वह समतल भूमि है, जिस पर गिरने की शंका निर्मूल है, जिस पर प्रगति के पद-चिन्ह आसानी से अंकित किये जा सकते हैं।

समय स्वद्रव्य आत्मा ही है

जीवन का सारभूत तत्त्व है समय व समय का सार है अपने लिए उपयोग में आया हुआ स्वसमय! जो समय का सदुपयोग चिन्तन-मनन में व्यक्त करता है, वही स्वसमय को प्राप्त करता है। समय में स्थिति करना ही तो सामायिक है। समय ही समय की सहायता से समय में स्थित हो रहा है। ऐसा वह समय स्वद्रव्य आत्मा ही है।

राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति : श्रेष्ठ मानव

राष्ट्र को कल-कारखानों से, कोलतार की बनी हुई सड़कों से, गगनचुम्बी आलीशान इमारतों से अग्रसर नहीं माना जा सकता। उसकी अमूल्य सम्पत्ति तो शुद्ध राष्ट्रीय आचार-सम्पन्न मानव है।

'मैं' को मिटाकर समत्व साधो

मैं ही सब कुछ हूँ यह मानना ही पाप का मूल है, क्योंकि वही सर्व रोगों की जड़ है। आत्मा तो असीम और सर्वव्यापी है, समस्त विश्व उसी में समाविष्ट है। बाहर से कुछ प्राप्त करना नहीं है। जो कुछ प्राप्त करना है, यह तुम्हारे भीतर ही समाविष्ट है। बाहर से प्राप्त करने व अपनाने का प्रयत्न करना असत्य है। जो कुछ अपना है, खो देना। पर को अपना बनाना लोभ है। मान ने हमें छोटा बना दिया है। मान के कारण ही छोटे-बड़े के विभेद की दीवारें खड़ी की गई हैं। जब अपने अहं को चोट लगती है तभी दुःख होता है। राग-द्वेष इन दोनों की रगड़ है। सभी को अपने भीतर देखो। अपने को देखो। बाहर से कुछ भी देखने, पाने का प्रयत्न माया है, मिथ्या है।

तुम्हारे 'मैं' के कारण तुम्हारा अहं सिकुड़ गया है। 'मैं' और 'तू' का द्वन्द्व मिटा कर सर्वत्र अपनत्व की, ममत्व की दृष्टि से देखना सीखो।

शठे शाठ्यं समाचरेत्

अज्ञान को क्षमा करना ही ज्ञान है। जब अन्धकार का साम्राज्य छा जाता है, तो क्या हम दीपक नहीं लगाते? कपड़े अस्वच्छ हो जाने पर स्वच्छ नहीं करते?

कोप को शांत करना शास्त्रीय भाषा में ठण्डे पानी का निर्झर स्रोत कहा है, किन्तु मार खाकर मार सहना, अनुचित क्षमा को प्रोत्साहित करना कौन-सा धर्म है? भूल के लिए क्षमादान परम धर्म है, किन्तु दुष्टता के लिए क्षमा दुष्टतारूपी सर्प को दूध पिलाने के समान

है। ऐसे प्रसंगों पर ही नीति-निपुण संस्कृत कवियों ने सूत्र रूप में बहुत बड़ी बात कही है: "शठे शाठ्यम् समाचरेत्"।

अति न हो

जिस प्रकार अधिक भोजन करने पर अजीर्ण हो जाता है उसी प्रकार भावना का भी अजीर्ण होता है। अग्नि भोजन पकाती है, किन्तु उसे वश में न की गई तो मकानादि को भस्मीभूत कर देगी।

इतनी ही बात कहो जितनी दूसरे को आवश्यक हो।

मुक्त हो

जिस प्रकार कैदी का मन अपनी मुक्ति के लिए छटपटाता रहता है, उसी प्रकार का साधक प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि किसी न किसी प्रकार से इस दु:खमय संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की जाये। इसी के लिए वह सचेष्ट रहता है।

मृत्युलोक दु:खदायक है

मृत्युलोक, जो जन्म-मरण धर्मवान से युक्त है। संसार एक स्वप्नमात्र है। प्राण, धन, दौलत, ताकत भी अस्थायी है। उसमें सुख नाम मात्र भी नहीं है। सुख और दुःख तो चक्रवत् घूमते ही रहते हैं। इन्द्रधनुष के रंगों की तरह बनते-मिटते और उभरते रहते हैं। चंचल मन पर कभी विश्वास किया जा सकता है? जिसने विश्वास किया है वह पिटा है, लुटा है।

मन वशीभूत हो

जिस प्रकार कुशल सारथि अपनी रास (रज्जु) द्वारा चंचल घोड़ों को नियन्त्रित करता है व उनको निर्दिष्ट पथ की ओर सहज गति से ले जाता है, उसी प्रकार मानवों को विभिन्न कार्यों की ओर प्रवृत्त करने वाला और नियन्त्रित रखने वाला हृदय-मन्दिर में विशेष रूप से प्रतिष्ठित, अश्व से चंचल और शीघ्र गतिगामी मन है। इसको वशीभूत करने के लिए सचेष्ट रहना चाहिए।

आत्म-विश्वास

आत्म-विश्वास से युक्त मानव कल्याणमय जीवन व्यतीत करें, क्योंकि आत्म-विश्वास से युक्त मानव, जीवन की वास्तविक परिस्थिति को जानता है। मंजिल की दूरी को देखकर घबराता नहीं। उसकी हार्दिक कामना रहती है कि वह उसका धीरतापूर्वक सामना करे। वह संसार की परिस्थितियों का स्वामी (मालिक) होकर रहना चाहता है, दास (सेवक) बनकर जीवन व्यतीत करना नहीं चाहता।

संकल्प-सिद्धि

जीवन की उन्नति के लिए समीचीन क्षेत्र, जीवन-यात्रा के लिए सन्मार्ग, सुन्दर सत्संग और दृढ़ अध्यवसाय इन तीनों की त्रिपुटी मिल जाये तभी संकल्प-सिद्धि हो सकती है।

कायरपना क्यों

'भगवान हमारे पाप दूर करेंगे, प्रकाश देव हमारे पाप क्षय करें' इस प्रकार की भावना कायरता का

चिन्ह है। हमारी आत्मा सर्वशक्तिमान परमैश्वर्य सम्पन्न शुद्ध-बुद्ध-निर्मल करने में समर्थ है।

एक रात में

पर्वत की चोटी पर वहाँ कोई नहीं है, किन्तु ऐसा मुझे लगता है कि वहाँ से कोई पुकार रहा है। घोर जंगल की छाया में केवल हवा सो रही है, किन्तु ऐसा क्यों लगता है कि वहाँ कोई बैठा बाँसुरी बजा रहा है। 'और' मुझे ऐसा क्यों प्रतीत होता है कि इन पर बैठा कोई बाँह फैलाकर मुझे ऊपर उड़ने को कह रहा है?

रात्रि के गहन अन्धकार में उसका नाम जपो, जो प्रकाशमय है।

रात्रि की निर्जनता में उसका ही नाम जपो, जो सर्वत्र देखता है। इस निविड़ अन्धकार में उसी सत्य ज्योति शिव और सुन्दर को स्मरण करो। जब प्रभात होगा, तब तुम्हारा हृदय अपने आराध्य के स्नेहालिंगन से पुलकित हो आयगा।

यह कौन अपरिचित है?

यह कौन कह रहा है कि आज गान गाओ, कौन कहता है कि आज कविता लिखो और कौन कहता है कि आज की रात में जागते रहो और अपनी आँखों को आँसुओं से धोते रहो—अंधकार में बाट जोहते रहो?

यह कौन अपरिचित है, जो कहता है कि गान गाओ?

यह उसी की वाणी है, जिसके निकट मेरे गान नहीं पहुँच सकते। यही उसी की करुणा है, जिसके निकट

मेरी कविता को आप प्रेम का मूल्य न करेंगे और वह उसी की अभिलाषा है, जिसके हाथ से मेरे संस्कार का पथ कभी आलोकित नहीं होगा।

इस धूर्त से सावधान

जगत तो तुम्हारा ससुराल है। तुम इसमें रहते आये हो। ससुराल शानदार है, किन्तु स्मरण रखिये कि तुम्हारे साथ मनरूपी एक धूर्त लगा हुआ है। आपस में, व्यक्ति-व्यक्ति में दरार पैदा करना इसका काम है। इससे बच जाओ, फिर कोई कठिनाई नहीं होगी।

यह मन ही तो है, जो तुम्हें दुनिया की नियामतों को भोगने नहीं देता। इसकी चेतना यहीं समाप्त नहीं हो जाती। यह जहाँ आश्रय पाता है वहीं नमकहरामी करता है।

वेगवान नदी

बरसात के दिनों में आपने देखा होगा कि नदी यौवनवती हो जाती है। वह यौवन में मदमाती, बल खाती, इठलाती चलती है। मदमाती चलती है तो अपनी सीमा को तोड़कर चलती है। उसका निर्धारित पाट—क्षेत्र होता है, उसको लांघती चलती है।

इस सीमाहीन अविवेकी गति में खेत की भी हानि होती है और कभी-कभी तो उससे जन-धन, पशु-धन की भी हानि होती है।

अधिकांश संसारस्थ मनुष्य भी बरसाती नदी की तरह लक्ष्यहीन—सीमाहीन दौड़ रहे हैं। उन्हें पता ही

[illegible] है कि [illegible] दौड़ रहे हैं [illegible] यहाँ [illegible] है ?

इसे एक उदाहरण द्वारा समझें :

और भरे जनाकीर्ण बाजार में एक व्यक्ति दौड़ रहा था, हाँफ रहा था और बस दौड़ रहा था।

किसी ने उसे रोका और पूछा : "तुम लोगों को धकेलते, बच्चों को भी 'हटो भागो' कहते जा रहे हो और भागे जा रहे हो, पर जरा यह तो बताओ कि जा कहाँ रहे हो ?"

पता नहीं।

कहाँ से आये हो ?

पता नहीं।

क्यों भाग रहे हो ?

पता नहीं।

बड़ी विचित्र बात है। उस भागने वाले को कुछ भी पता नहीं।

सचाई यह है कि अधिकांश मानव भी उस 'पता नहीं' वाले मूर्ख आदमी की तरह ही भाग रहे हैं, जिन्हें जीवन के लक्ष्य का भी पता नहीं। क्यों भाग रहे हैं, यह भी पता नहीं और आ कहाँ से रहे हैं, यह भी पता नहीं।

साम्यभाव

मानव,

तेरे मानस में जो मानव-मानव के मध्य में ऊँच-नीच की दीवारें हैं, उन्हें गिरा दे। मानव तो मात्र मानव है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—यह काल्पनिक भेद-भाव

है, इस दीवार को तोड़ दे। व्यक्ति-पूजा के स्थान पर गुण-पूजा का अनुसरण करना शुरू कर। किसी को दलित, किसी को अनुसूचित, किसी को सवर्ण, किसी को असवर्ण मत मान।

मानव,

बस, इस दीवार को तोड़ दे और साम्यभाव का आनन्द प्राप्त कर। मानवीय जीवन के इस गुण को भुलाकर तू बहुत बड़ी भूल कर रहा है। यह भूल ही तेरे जीवन का अभ्युदय नहीं होने दे रही है।

आत्मोद्धार क्यों नहीं ?

अध्यात्म जगत के साधकों का एक प्रश्न है, जो प्रायः सभी नव-सीख साधकों को सालता रहता है। उनका कहना कि आत्मोद्धार कब होगा ? क्यों नहीं हो रहा है ?

चिन्ता तो यह ठीक ही है। जब साधना की जा रही है, सिद्धि क्यों नहीं मिल रही है ?

इस प्रश्न का उत्तर आज ही नहीं, हजारों वर्ष पहले ही मनुष्यों ने दिया है। मैं समझता हूं, वह उत्तर बहुत ही सटीक है। उन्होंने कहा था :

आत्मोद्धार किसी विशेष प्रकार के मत को स्वीकार करने से नहीं होगा। आत्मोद्धार तो समभाववृत्ति अपनाने से ही होगा। सम्प्रदाय में रहते हुए भी जिन मनीषियों ने इस तरह का चिन्तन किया है, वस्तुतः उन्होंने आत्मा की गहराई को पा लिया था। तभी तो उन्होंने कहा था :

सेयंवरो वा आसम्वरो वा,
वुद्धो वा तहव अन्नो वा।
समभाव भाविअप्पा,
लहई मोक्खं न संदेहो।

श्वेताम्बर बनने से, दिगम्बरत्व का लेबिल लगाने से या बौद्धानुयायी होने का प्रमाण-पत्र तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता। तुम्हारा उद्धार तो जब तुम्हारी आत्मा समभावमय हो जायगी तभी होगा—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

जीवन की तीन अभिव्यक्तियाँ

इस अवनि पर तीन प्रकार की मानवाभिव्यक्तियाँ हैं:

पेड़ और पौधों के रूप में जीवन सोता रहता है।
प्राणियों में जीवन साकार स्वप्न देखता है।
मानवों में जीवन जाग्रत होता है।
यह इस तरह घटित है:

मनुष्य जब सोता है, पेड़-पौधों की तरह होता है।

मनुष्य जब कल्पनालोक में होता है, तर्क-वितर्क के जाल में घिरा होता है तो स्वप्नमय हो जाता है।

मनुष्य जब मनन करता है, चिन्तन करता है, सद्-विचारों को जन्म देता है तो मनुष्य की श्रेणी में आता है।

इस नम्रता से बचो

जो अति नम्र है, समझ लो कि उसकी नम्रता में कहीं

दाँव है, पेंच है, कुटिलता है। जो सहज नम्र है—बनावट से एकदम दूर, वही सच्चे अर्थों में नम्र है। इस तरह की नम्रता जीवन में चमत्कार पैदा करती है। इस नम्रता से दूसरों का अभ्युदय हो सकता है, किन्तु जिसमें बनावटी नम्रता है उसकी तह में हिंसक पशु की घातकता छुपी हुई होती है।

इस तरह कुटिल नम्रता से बचना ही श्रेयस्कर है।

कर्त्तव्य की बलि-वेदी पर

मैंने देखा कि एक मालाकार पौधों को तराश रहा था। फिर उन्हें एक स्थान से हटाकर दूसरी जगह पर भी लगा रहा था।

मैंने प्रश्न किया : "तुम इन्हें उजाड़ रहे हो ?" वह मुस्कराया। उत्तर दिया : "मैं इन्हें उजाड़ भी रहा हूं और साथ ही इसका निर्माण भी कर रहा हूं। मैं इन्हें जीवन भी दे रहा हूँ।"

"जिन्हें तुमने काट दिया, तराश दिया, उन्हें जीवन कैसे दे रहे हो ?"

"हाँ, वह इस तरह कि इन्हें हवा, पानी, रोशनी मिलने में दिक्कत हो रही थी, अतः अलग-अलग लगाकर, उन्हें पूरी खुराक जुटाकर जीवन दे रहा हुं।"

"तुम्हें इन पौधों का लाभ कब मिलेगा, कब फल चखोगे ?"

"ठीक है, मेरी बुढ़ौती को देखकर आप यह सवाल कर रहे हैं, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मुझे इनके

देता है। साधु भी गुण ग्रहण करता है और अवगुण को, बुराई को छोड़ देता है।

तत्व ग्रहण करने वाले साधु को इससे कोई सरोकार नहीं होता है कि व्यक्ति में दुर्गुण भी है। उसे तो मात्र गुणों से काम है।

मन की गुलामी तोड़ो

गुलामी या दास-प्रथा में क्या होता है ?

पूरा का पूरा जीवन समाप्त हो जाता है, किन्तु दासता से मुक्ति नहीं मिलती।

मनुष्य ने भी मन की गुलामी को स्वीकार किया हुआ है। वासना मन की गुलामी है। व्यसन भी मन की गुलामी है। रस-लोलुपता भी मन की गुलामी का अंग है। इस मन की गुलामी से बचो—यदि जीवन में सदाचरण का स्वर्णिम प्रभात देखना है।

जोश में होश चाहिए

नेहरू का जोशीला भाषण सुनकर एक व्यक्ति ने परंपरागत कार्य को छोड़ दिया और वह नये काम में जुट गया। परिणाम क्या हुआ ?

वह अपनी पूंजी गँवा बैठा। अन्त में पुराने को छोड़ने का पश्चात्ताप तो हाथ लगा ही, साथ ही नये कार्य में जोश के साथ-साथ होश न रहने के कारण निराशा हाथ आयी।

जोश में वाणी का जादू होता है। वाणी का जादू उनके शब्दों तक ही सीमित होता है। भावना का आवेग

: चार :

अँधियारे के दीप

के

शब्द-शिल्प

तो बेजान है। शब्दों को मुँह से उगलने वाला ही चम-त्कारी है। वह शब्दों का शर-संधान करता है और बड़े-बड़े बलशाली व्यक्ति—यहाँ तक कि पशु को भी अपने शर-संधान द्वारा वश में कर लेता है। यह काम मात्र वाणी का जादूगार मानव ही कर सकता है। ०

मात्र असत् की सत्ता ही मनुष्य में मोह पैदा करती हो, ऐसी बात नहीं है। उसका चिन्तन भी मोह पैदा करता है। ०

यदि तुम्हारी आत्मा में पवित्र के गुणों का प्रादुर्भाव हो गया है तो तुम्हें किसी भी प्रकार के विधि-विधान या पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है। ०

वह गहनतम अंधकार में जी रहा है, जो अपनी प्रशंसा आप कर रहा है या जो अपनी प्रशंसा सुनकर फूला नहीं समा रहा है। ०

साधना का सीधा और साफ अर्थ है स्वभाव में परि-वर्तन—जीवन में परिवर्तन—यानी साधना से पहले जैसा आपका स्वभाव था, साधना प्रारम्भ करने पर उसमें परिवर्तन यदि नहीं आता है तो जाहिर कि साधना का सुफल आपको नहीं मिल रहा है। साधना में कहीं कोई कमी आपसे हो रही है। ०

आपका सम्पूर्ण जीवन अतीत के अनंत में समाता चला जा रहा है आपको आज तक यह विचार नहीं आया कि गाली का जवाब मौन है। ०

'पहले जानो और फिर करो' यह तो अच्छी बात

, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि करने के बाद जानने को कुछ शेष ही नहीं बच रहता। ०

शरीर-विज्ञान ने अनेक बार मानव समाज को आश्चर्य में डाला है कि आज जो पुरुष है, उसे एक दिन स्त्री के रूप में परिवर्तित कर दिया। यहाँ तक कि उसका नाम तो बदला ही, पुरुष को स्त्री बना दिया गया और उसे कायदे से दूसरे के घर पुत्रवधू बन कर जाना पड़ा।

जैन दर्शन को इससे आश्चर्य तनिक भी नहीं हुआ। वह स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद—इस तरह तीनों वेदों की विद्यमानता प्रत्येक प्राणी में मानता है। एक समय में एक वेद का प्राधान्य होता है। कभी-कभी प्रधान वेद गौण हो जाता है और दूसरा वेद प्रकट हो जाता है। ०

संसारस्थ जितने भी प्राणी हैं, वे सब आदर्श की प्राप्ति के लिए सचेष्ट हैं। आदर्श प्राप्ति के साधन उपदेश, शास्त्र-श्रवण ये सब साधन हैं, अतः साधनों की चिन्ता करना ही सफलता की कुंजी है। ०

इस असीम संसार में मिलन का यदि कोई स्थान है, तो वह प्रेम ही हो सकता है। ०

अध्यवसायी मानव कहीं भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है, क्योंकि उसकी ज्ञान की आँखें खुली रहती हैं। निरीक्षण भी सशक्त होता है। उसकी दृष्टि पारगामी होती है। ०

इन्सान, तुम्हारी सूरत में इन्सान की सूरत अंकित

होनी चाहिए। अगर तुम्हारे दिल के आईने में इन्सा-
नियत की छवि अंकित नहीं है तो नेक आदमियों का
कहना है कि तुम से पत्थर की वह मूरत अच्छी
जिसमें न अच्छे की छाया अपनी तस्वीर बना सकत
और न बुरे की।

मनुष्य मूर्ख है तो कोई बुराई नहीं—कमजोर
निर्बल हो, तो भी विशेष आपत्ति जैसी बात नहीं, कि
यदि वह बेईमान हो तो, चरित्रहीन हो तो, बुद्धिम
और चतुर भी अक्षम्य है।

वास्तव में जीवन अन्धकारमय है—मात्र उन शु
शुभ घड़ियों को छोड़कर, जिनमें वह श्रम करता
उद्यम के अस्तित्व से भाग्य-निर्माण को स्वीक
करता है।

सूर्य प्रति दिन उदित होकर जीवन में नव संचार, न
किरण, नव उल्लास का वातावण पैदा करता है, इस
प्रकार मानव, तुम भी 'आशा ही जीवन है' ऐसा मानक
चलोगे तो सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

जब रात में सोते हो तो उम्मीदों और आशाओं की
विशाल छत के नीचे यह सोचकर सो जाओ कि कल का
दिन जैसे सूर्य नई उमंग लेकर आता है, ऐसे ही मेरे
जीवन में भी नव उमंगों का रोज-रोज सूर्य उदय हो। ०

लोभ के समान कोई पाप नहीं, संतोष से ऊपर कोई
सुख नहीं, तृष्णा के समान कोई व्याधि नहीं, दया से
बढ़कर कोई धर्म नहीं—यही धर्म का मर्म है। ०

खुद को खुदी में ढूँढ़ खुदी को भी दे निकाल।
फिर तू ही खुद कहेगा खुदा हो गया हूं मैं॥ ०

चरित्र एक अमूल्य चमकदार हीरा है, क्योंकि मनुष्य के आचरण के कोष में चरित्र की सम्पत्ति सबसे बड़ी है। सम्पत्ति और ज्ञान के स्वामी में यदि चरित्र के रीढ़ की हड्डी नहीं है, तो वे ऐसे टूटते हैं कि जुड़ नहीं पाते। सूर्य और चन्द्र ग्रहण से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु जिनमें चरित्र अथवा आचरण का प्रकाश नहीं है, पतन के राहु-केतु उन्हें पूरा निगल ही जाते हैं। ०

जिस काल में हम रहते हैं उसी काल के खेत में चरित्र की फसल पैदा करनी होगी। बंजर भूमि में भी तो चतुर किसान फसल पैदा कर लेता है। ०

हंस मुक्ता चुगता है, वह पानी और दूध को अलग-अलग करके रख देता है, उसी प्रकार सन्त गुण और दोष, जड़ व चेतन में भेद करके सारभूत पदार्थ ग्रहण कर लेता है। ०

जब मानव दुष्कर्मों और दुराचरणों में फंस जाता है, तो पतन का अन्त वैसे ही आता है जैसे ऊँचे पर्वत से गिरने वाला निरन्तर लुढ़कता ही चला जाता है। ०

मानव ने मानवता को छोड़ दिया, दानवता अपना ली। इंसानियत का रास्ता छोड़ हैवानियत की राह पकड़ ली, जिससे उसकी जिन्दगी बद से बदतर होती चली जाती है। ०

फरिश्ता भी यदि शैतान के साथ हो जाता है, तो नियत अपना ही लेता है। अच्छाई को यदि बुराई

जिस समाज में प्रवेश करेगा, जिस देश में वह कदम रखेगा, वहीं उसका स्वागत करने के लिए आगे से आगे लोग प्रतीक्षा करते हुए तैयार रहेंगे । ०

कर्महीन, आलसी सदा तदवीर न कर तकदीर को ही रोता रहता है । जब मानव का अपना वश नहीं चलता है तो वह स्वयं को तकदीर के हवाले कर देता है । ०

ईर्ष्या, द्वेष अतिसंचय, विषय-कषाय, भोगलिप्सा, भ्रष्टाचार, मान-मद-लोभ आदि हिंसा और उत्पीड़न में गर्भित हैं । इन सब का एक ही क्षेत्र है । इनके अस्तित्व में कोई देश, राष्ट्र और समाज पनप नहीं सकता है, क्योंकि ये अधर्म हैं । अतः नीति और धर्म एक ही चीज है । इनमें जो पृथक्करण करते हैं, वे भ्रम में हैं । ०

राध, राधा, राधिका पर्यायवाची शब्द हैं । इनका एक ही अर्थ है । राधा सहित आनन्द-स्वरूप आत्मा की

कृष्ण अंश है। कृष्ण और राधा का छाया और छायावान के समान ही तादात्म्य सम्बन्ध है। ०

रूहानियत के जल्वे की धार से जिसकी निगाहों का नूर जल कर सुरमा हो गया है, वही मूसा है। ०

अहं भाव को त्यागकर, स्व में रत होकर, सर्व अपराधरहित शुद्ध जिन परमात्म तत्त्व का ग्रहण करते हुए बंध और उसके कारण का विध्वंस करके आत्मा को पूर्ण मुक्त करना ही मानव का परम श्रेय है। ०

विषयों का ध्यान करते रहने से पुरुष का विषयों से संग (इच्छा) होती है, संग होने से कामना उत्पन्न होती है, कामना से क्रोध होता है, क्रोध से अज्ञान, अज्ञान से स्मृतिनाश, स्मृतिनाश से बुद्धिनाश और बुद्धि नष्ट हो जाने से सब कुछ नष्ट हो जाता है अर्थात् दुर्गति का पात्र बन जाता है। ०

संसार में ही रहा-सहा जाय और सेवा की जाय तो फिर संन्यास लेना जरूरी कहाँ रह जाता है?

ठीक है, बिल्कुल भी जरूरी नहीं है। वैसे संन्यास का अर्थ संसार से सर्वथा कट जाना तो नहीं है। संन्यास सेवा-धर्म से अलग नहीं है। वह उपदेश देता है, तो वह भी सेवा ही है समाज की। ०

मानसिक रोगों का उद्भव होता है संयम के अभाव से। जीवन में संयम का विकास जितना होगा, शांति का भी उतना ही विकास होगा। संयम के लिए जरूरी है संकल्प। ०

सरल भाषा में जीवन की परिभाषा यही है—श्वांस

लेते रहो। किन्तु, यह साँस लेना भी तो सब को नहीं आता। साँस लेना आ गया तो जीना आ गया। योग के सम्बन्ध में सोचते समय यही कहा गया है कि साँस लेना सीख लो, जीवन को बहुत बड़ी शक्ति हासिल हो जायगी। श्वास, मन और विचार का सामंजस्य स्थापित करना ही जीवन है।

०

नास्तिक लोग भगवान में विश्वास नहीं करते, आत्मा में भी विश्वास नहीं करते, इसलिए दिन-रात बुराई में संलग्न रहते हैं। किन्तु, आश्चर्य की बात तो यह है कि जो लोग भगवान में भी विश्वास करते हैं, लोक-परलोक में भी विश्वास करते हैं, फिर भी बुराई को नहीं छोड़ते, उन जैसा अज्ञ और मूढ़ कोई हो सकता है ? हाथ में लालटेन—जलती हुई—लेकर भी जो कुएँ में गिर जाता है, उस जैसा अज्ञानी ढूँढ़े से कहीं मिलेगा ? नहीं मिलेगा। आश्चर्य इसी बात का है कि धार्मिक विश्वासों की लालटेन होते हुए भी वह महामूर्ख है।

नीति

देश में शिक्षा का प्रसार इस प्रकार होना चाहिए, जिसमें बच्चे का सर्वांगीण विकास हो सके। जीवन का कोई पक्ष शिक्षा और सुसंस्कारों की दीक्षा से शून्य न रह जाए।

०

स्वतंत्रता सत्ता प्राप्त इने-गिने व्यक्तियों को ही लाभान्वित करती है। सामान्य जन तो सदा परतंत्रता ही अनुभव करते हैं।

घोड़े का सवार बदल गया तो क्या हुआ ! घोड़ा

कि धन-वैभव संयोग की वात है। इसका अभिमान कैसा? यह तो आज है, कल नहीं। सूरज की ढलती छाया को मोहवश वाँधने की कोशिश करना अज्ञानता है। इस छाया से जिसको भी अधिकाधिक लाभान्वित किया जा सके, कर देना चाहिए। ०

पद-पद पर दूसरों का अवलंवन ग्रहण करने वाला व्यक्ति भी विपत्ति के समय कभी-कभी परम धैर्य और शूर-वीरता का परिचय देता है। यहाँ तक देखा गया है कि विपत्ति के समय उसकी सम्पूर्ण चेतना ऐसे जाग्रत हो जाती है, जैसे विजली का प्लग दवाया और रोशनी हो गई।

नीतिज्ञ पुरुषों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति में मूलतः वे सव गुण मोजूद हैं जिनको जाग्रत करने की उसे सदा से प्रेरणा दी जाती रही है। तभी उसमें समय आने पर उन सव गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। ०

मानव की एक वड़ी दुर्वलता यह है कि वह दूसरों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर फूला नहीं समाता है। मूर्ख और चापलूस व्यक्तियों से प्रशंसा सुन भी लो, तो उससे उसका कोई भला होने वाला नहीं है। वुद्धिमान से उपालंभ सुनना भी मनुष्य की भलाई के लिए है।

अक्ल के कौवे से वच के रहना

अक्ल एक परम वाचाल कौवा है। इसके पीछे मत पड़ो। यह तुम्हें कूड़े के अम्वार पर ले जाएगा। जव कूड़े के ढेर पर पहुंचेगा, तो तुम्हें असत्य का पत्थर मार-कर जख्मी कर देगा। तुम्हारा सत्य-घट फूट जाएगा,

सद्गुणों का पानी बिखर जाएगा और तुम्हारी आत्मा प्यासी रह जायेगी।

मानवता का हत्यारा

मानवता की हत्या करने वाला असत्य है। चाहे यह हिंसा के रूप में तुम्हारा अहित करे या चोरी की प्रेरणा देने को खड़ा हो। वासना के अन्ध कूप में धक्का दे या परिग्रह के महार्णव में डुबो दे। असत्य मानवता का परम शत्रु है।

उत्साह की चिनगारियाँ

उत्साह की एक चिनगारी जीवन के महावन को जला डालने के लिए पर्याप्त है।

जीवन का महावन जलाने की बात थोड़ी-सी परिक्रमा के बाद हमें यों समझनी है :

दुराग्रह और दुराचार के महावन को उत्साह की एक चिनगारी भस्म कर सकती है, परन्तु शर्त इतनी-सी है कि उस चिनगारी को प्रज्ज्वलित कर लिया जाय।

अतिथि देवो भव

अतिथि का आदर-सत्कार न कर जो स्वयं अकेला ही खाता है, वह ऋषियों के शब्दों में पाप को खाता है।

अतिथि का अनादर अपने यश और कीर्ति के प्रासाद को नष्ट कर देता है—यह भारतीय विश्वास ही नहीं है, इस मान्यता के पीछे ऋषि-मुनियों का अनुभव है। इसीलिए उन्होंने शिक्षा प्राप्त कर चुकने पर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाले शिष्यों को आशीर्वाद-स्वरूप "अतिथि देवो भव" की पताका थमाई थी। ०

मनुष्य का दाहिना हाथ पुरुषार्थ का सूचक है, तो बायाँ हाथ विजय का। पुरुषार्थ पुरुष है और विजय सन्नारी। पुरुष और नारी का संगम ही गृही जीवन की पूर्णता का सोपान है।

मित्र की अनेक व्याख्या है। उन सब व्याख्याओं में एक ही तथ्य सन्निहित है कि सच्चा मित्र विपत्ति के समय अपने मित्र की हर संभव सहायता करे। उस समय मित्र की विपत्ति और अपनी विपत्ति में भेद-रेखा न बनी रहने दे।

घरनी बिन घर सूना

गृहिणी है तो घर है। गृहिणी नहीं तो घर नहीं। नारी गृहलक्ष्मी है। नारी साक्षात् घर है। उसी से घर की शोभा है। उसी से घर में रौनक और रोशनी है। पुत्र को घर का दीपक कहा जाता है, किन्तु उसका निर्माण नारी ही करती है।

लक्षाधिपति मुद्रा पर सर्प की तरह कुंडली मारकर बैठ सकता है, किन्तु उसे गृहस्वामी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि गृही सच्चे अर्थों में गृहस्थ तभी कहलाता है, जब वह घर युक्त यानी गृहिणी या नारी से संयुक्त है। घरनी के बिना तो घर सूना ही नहीं, भूतों का निवास है। गृहिणी ही तो विपथगामी पुरुष को सत्पथ का अनुगामी बनाती है।

कष्टों को निमन्त्रण है

महापुरुष कष्टों को निमंत्रण देकर चलते हैं। यह महापुरुषों के लिए उचित था, ऐसी बात नहीं। यही

सभी के लिए उपयोगी है। कष्टों को सहकर जीवन बन जाता है। उन्हें कहते रहने से, उनका रोना रोते रहने से, मनुष्य का न जीवन बनता है और न सहकर जो पाया जा सकता है वह उसे मिलता है। कष्टों को सहो कहो मत, यह जीवन का महामंत्र है।

महावीर निर्वाणोत्सव

जहाँ पर श्रमण-शिरोमणि भगवान महावीर ने जन्म लिया था, वहाँ वैशाली नहीं है। वह विशाल वैशाली हमारे हृदय में है। पावापुरी का सरोवर हमारा निर्मल मन है। सच्चा निर्वाणोत्सव हमें यहीं मनाना है और महावीर और महावीर के कार्यों और उपदेशों का अपने तथा औरों के जीवन में उतारना है।

समय चिन्तामणि है

जिस प्रकार कामधेनु गाय वाञ्छित फल देने वाली है, उससे कुछ भी याचना करो तो याचना की पूर्ति हो जाती है, उसी प्रकार समय भी चिन्तामणि गाय है। समय श्रमाग्नि में तपकर स्वर्ण बन जाता है। अवसर की सीपी में गर्भ धारण कर मुक्ताफल हो जाता है। दुर्भेद्य समुद्र का मन्थन कर सुन्दरतम विचारों की रत्न-राशि मिल जाती है। संसार में जो कुछ किया गया है तथा किया जा सकता है वह समय द्वारा ही सम्भव है।

सम्पदा और विपदा

सम्पदा और विपदा दोनों जीवन-संगिनी हैं। यह संयोग की बात है कि एक अमीर की संगिनी है, दूसरी गरीब की।

इन दोनों के स्वामियों में संघर्ष है, किन्तु सम्पदा और विपदा की अविच्छिन्नता को कोई चुनोती देने में समर्थ नहीं।

नित नूतन ज्ञान

क्षुधा से मानव व्याकुल होता है, भूख उसे पीड़ा पहुंचाती है—इसी प्रकार ज्ञान की प्यास से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता।

ज्ञान प्रति क्षण नूतन है। वह कभी जीर्ण नही होता। स्वाध्याय, चिंतन, तप, संयम और ब्रह्मचर्य के माध्यम से ज्ञानकोष को पाया जा सकता है।

ग्राहकों में ईश्वर को देखो

कई व्यापारी अपने ग्राहकों को दीपावली के समय नव वर्ष में अपने आराध्य देव के मंत्रों के चित्र प्रदान करते हैं, पर परमात्मा सदा उनके पास है, सामने है, ऐसा विचार कर व्यवहार नहीं करते। ग्राहकों को अनुचित रूप से ठगते समय वे यह विचारते हैं कि भगवान तो बहरे हैं, सुनते तो है नहीं, यह विचारकर अपना व्यापार करते रहते हैं। किन्तु भगवान के सामने ही भगवान के के दूसरे रूप को कोई धोखा कैसे दे सकता है ?

तीर्थ यात्रा

मानव तीर्थ यात्रा करने जाता है। त्याग के प्रतीक—स्वरूप कुछ वस्तुओं का त्याग करता है। इसी भावना से वह कद्दू वट के फल को छोड़ता है। काम, क्रोध, मद, विकार, राग-द्वेष जन्य विकारों को छोड़ना चाहिए।

यदि परमात्मा से मिलना है, परमात्मामय बनना है, तो प्रिय वस्तु का त्याग करने पर ही वैसा बन सकोगे ।

तुमने यदि अमुक तीर्थ की यात्रा करते समय क्रोध, काम, मद आदि का परित्याग किया है, तभी तुम्हारी तीर्थयात्रा फलदायी बन सकती है ।